जून 2022

रंग संवाद

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र की
संवाद पत्रिका

भाव से अहोभाव की यात्रा

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र

रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल

शिक्षा तथा संस्कृति की परस्परता का रचनात्मक उपक्रम

अवधारणा, परिदृश्य और उद्देश्य

नई छात्र पीढ़ी में विज्ञान और तकनीकी शिक्षा के साथ संस्कृति, कला तथा साहित्य के प्रति जिज्ञासा, अभिरूचि, सृजन और संस्कारशील व्यक्तित्व गढ़ने के उद्देश्य से रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र की स्थापना की गई है।

अपनी सक्रियता के चलते इस केन्द्र ने अध्ययन, शोध और प्रदर्शनकारी गतिविधियों के माध्यम से विश्वविद्यालय में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं तथा विभिन्न विधाओं के अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त सर्जकों और विशेषज्ञों के बीच नवोन्मेषी रचनात्मक परिवेश तैयार किया है।

यह केन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल, डॉ. सी. वी. रामन विश्वविद्यालय, बिलासपुर, खंडवा और पटना तथा आईसेक्ट विश्वविद्यालय हजारीबाग में समान रूप से संचालित है। भोपाल इसकी केन्द्रीय इकाई है।

विभिन्न ललित कलाओं, संस्कृति और साहित्य के विभिन्न पक्षों को अपनी गतिविधियों के दायरे में रखते हुए यह केन्द्र आंचलिक प्रस्तुतियों के अलावा शोध, विमर्श, संवाद, सृजन-शिविर, कार्यशालाओं, पुस्तक लोकार्पण, व्याख्यान, संपादन, अनुवाद और दस्तावेज़ीकरण की दिशाओं में सक्रिय है।

स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के अनेक आयोजनों ने सकारात्मक परिवेश तैयार किया है। इस केन्द्र की सक्रियता को साहित्य, ललित कलाओं और रंगमंच की श्रेणियों में देखा जा सकता है।

अपनी प्रवृत्तियों और उद्देश्यों के साथ टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र बहुलता की संस्कृति का आदर करते हुए सौहार्द और समन्वय की पुनर्स्थापना के लिए कृत संकल्प है।

संपर्क

भोपाल-विकलोद रोड, बंगरसिया चौराहे के पास, भोपाल, फोन : 0755-2700400, 2700404, मो. 9826392428

ई-मेल : tagorekala9@gmail.com, vinay.srujan@gmail.com

रंग संवाद

फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा श्रेष्ठ प्रकाशन पुरस्कार से सम्मानित

जून- 2022

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र

रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय की संवाद पत्रिका

प्रधान संपादक

संतोष चौबे

choubey@aisect.org

संपादक

विनय उपाध्याय

vinay.srujan@gmail.com

संपादन सहयोग

मुदित श्रीवास्तव

samvaad.mudit@gmail.com

शब्दांकन : **अमीन उद्दीन शेख**

संपादकीय संपर्क:

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, ऋतुरंग प्रकोष्ठ

रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय

ग्राम मेंदुआ, पोस्ट-भोजपुर, बंगरसिया चौराहा के पास,

भोपाल-चिकलोद रोड, रायसेन-464993

मोबाइल : 9826392428

• • •

जरुरी नहीं कि पत्रिका में संग्रहित आलेखों-चित्रों में व्यक्त रचनाकारों के विचारों से 'रंग संवाद' सहमत हो। किसी भी विवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र भोपाल रहेगा।

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल द्वारा प्रकाशित

ई-मेल : **tagorekalabpl@gmail.com**

मुद्रक : आईसेक्ट पब्लिकेशन, सी-10, इंडस्ट्रियल एरिया, बगरोदा (भोपाल)

इस बार

- शांति निकेतन का आदर्श– अम्लान दत्त/7
  मूल बांगला से अनुवाद : उत्पल बैनर्जी
- नाट्य कला का अध्यापन– आलोक चटर्जी/13
  संदर्भः नई शिक्षा नीति
- तीसरी रंगधारा के जनक– ज़ाहिद ख़ान/15
- यादों का संतूर– विनय उपाध्याय/17
- संतूर बज रहा है... (कविताएँ) प्रेमशंकर शुक्ल/सुदीप सोहनी/24
- वे सोपोरी बाज के बेताज फ़नकार थे– नेहा/27
- पंडवानी का परचम– सुधीर सक्सेना/29
- क़िस्सा-ए-ओम-सुधा– सूर्यकांत नागर/32
- खारा तो नहीं हुआ तुम्हारी आत्मा का जल?– श्याम सुंदर दुबे/37
- भाव से अहोभाव की यात्रा– अरविन्द ओझा/42
- विरासत का संस्कार मेरी पूँजी/46
  यतीन्द्र मिश्र से अनुलता राज नायर का संवाद
- सुरीला परिवेश– उल्हास तेलंग/51
- उस्ताद ने शागिर्द को अपना 'तबला' दे दिया– स्वरांगी साने/54
- ये है... जानकी बैंड/56
- जैसे कोई सर्दियों में धूप को छुपा ले– गोविंद गुंजन/58
- बुकर और हिन्दी की बहस– अजय बोकिल/60
- रुह की धड़कन बन गए पत्थर/62
- हो चित्त जहाँ भय शून्य– मुदित श्रीवास्तव/64
- अभिनय की काया में किरदार– सुदीप-ऐश्वर्या/66
- लोक और शास्त्रीय रंग परंपरा की हमजोली/68
- नई दीर्घा, नए रंग– विवेक सावरीकर/70
- नई रचनात्मक दिशाओं की तलाश– संजय सिंह राठौर/72
  वनमाली कथा सम्मान समारोह

सृजन के आसपास

युनुस ख़ान, संजय पटेल, अलीम बज़मी, सुरेन्द्र डी. सोनी, पल्लव, विकास तिवारी, समय ताम्रकर, निशांत उपाध्याय, हिमांशु राय

➲ **आवरण चित्रः** अशोक भौमिक ➲ **आवरण आकल्पन :** वंदना श्रीवास्तव

➲ **भीतर का आकल्पन :** विनय उपाध्याय, अमीन उद्दीन शेख ➲ **छायाचित्र :** उपेन्द्र पटने, तनवीर फ़ारुक़ी, प्रवीण दीक्षित, राज

➲ **सहयोग :** हेमंत देवलेकर, समीर चौधरी, रोहित श्रीवास्तव

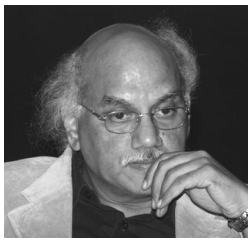

रंगमंच, कला और शिक्षा

'रंग संवाद' का यह अंक जिन विविध विषयों को छूता है उनमें सबसे पहला गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की जीवन दृष्टि और उनके द्वारा स्थापित शिक्षा संस्थान शांतिनिकेतन के आदर्शों के संबंध में है। बांग्ला भाषा के प्रसिद्ध विद्वान अम्लान दत्त बताते हैं कि शांति निकेतन के शिक्षा के आदर्शों में रोज़गार उन्मुखता कभी भी प्राथमिकता में नहीं रही। गुरुदेव एक ऐसे आत्मीय समाज को गढ़ने का प्रयास कर रहे थे जिसमें विश्व के भिन्न-भिन्न स्थानों से लोग आकर एक गरमाहट भरी सहृदयता के साथ रहें। कवि की अपेक्षा थी कि शिक्षा की पूर्णता के लिये आत्मीय समाज के साथ सम्पर्क भी उतना ही आवश्यक होगा। गुरुदेव का देहावसान हुए आधी से ज्यादा सदी बीत गई है। फिर भी शांतिनिकेतन की अपनी एक विशिष्ट विचारधारा और स्वर है। उसकी उपेक्षा करने से देश को ही नुकसान होगा। इस देश का समाज और संस्कृति आज भी जिन विरोधाभासों से दो-चार हो रहे हैं, जैसे कि रोज़गारमूलक शिक्षा के साथ पूर्ण-मनुष्यता की शिक्षा का विरोध, ग्राम और नागरिकता का परस्पर विरोध, दो असमन्वित संस्कृतियों के आपसी विरोधाभास आदि, शांतिनिकेतन हमें सदाशयता के साथ सचेत होने तथा प्रयास करने के लिए प्रेरित करता है।

•

रंगमंच और शिक्षा के संबंधों पर भी रंग संवाद का यह अंक गहराई से विचार करता है। आलोक चटर्जी, जो म.प्र. नाट्य विद्यालय के निदेशक भी रहे हैं नई शिक्षा नीति का संदर्भ लेते हुए कहते हैं कि वह शुभ समय आ गया है जब रंगमंच को स्कूल के समय से ही व्यवस्थित रूप से अध्ययन-अध्यापन के लिये प्रयुक्त किया जाए। उसके माध्यम से बच्चों को भारत, भारतीयता और भारतीय संस्कार से परिचित कराया जा सकता है।

बादल सरकार को भारतीय रंगमंच में तीसरी रंगधारा का जनक माना जाता है। उनका एक बहुत अच्छा परिचय ज़ाहिद ख़ान देते हैं। बादल सरकार ने रंगमंच में जब कदम बढ़ाए तब पश्चिम बंगाल में उत्पल दत्त और शंभु मित्र जैसे रंगकर्मियों और निर्देशकों का बोलबाला था। इसी दौर में हिदी में मोहन राकेश, कन्नड़ में गिरीश कर्नाड और मराठी रंगमंच में विजय तेंदुलकर अपने नाटकों से हलचल मचाए हुए थे। बादल सरकार ने इन सब रंग निर्देशकों से अलग हटकर, अपनी एक जुदा पहचान बनाई। उन्होंने साल 1967 में 'शताब्दी' नाम से एक रंगटोली तैयार की और पश्चिम बंगाल के ग्रामीण इलाकों में अपने नाटक लेकर पहुँचे। यह कुछ-कुछ राज्य के पारंपरिक लोक नाट्य 'जात्रा' की शैली थी। पर ये नाटक लोक नाट्य नहीं थे, बल्कि आधुनिक नाटक थे। रंगमंच में पारंपरिक मंचीय प्रदर्शनों के बजाय वे अपने नाटकों को दर्शकों के बीच ले गए। उन्हीं के बीच नाटक खेले गए। यह एक नया प्रयोग था। जिसमें किरदारों की ख़ास ड्रेस, मेकअप, स्टेज पर रौशनी और साउंड सिस्टम वगैरह का बंदोबस्त नहीं करना होता था। नाटक, दर्शकों के बीच खुले मैदान, सड़क के किसी नुक्कड़ या बीच चौराहे पर खेले जाते। कई बार दर्शक भी उनमें किरदार के मानिंद हिस्सा लेते थे। किरदारों के साथ बोलते-बतियाते। नाटक से वे पूरी तरह से जुड़ जाते। जाहिर है कि यह रंगमंच दर्शकों को ख़ूब पसंद आया। रंगमंच की तीसरी धारा यानी 'थर्ड थिएटर' की यह शुरुआत थी। जिसका उन्होंने लगातार विकास किया। आगे चलकर 'थर्ड थिएटर' से ही उनकी रंगमंच में पहचान बनी। दिल्ली और मुंबई जैसे महानगरों में जब बादल सरकार अपने इस थिएटर को लेकर पहुँचे, तो वहाँ के रंग-जगत में हलचल पैदा हुई। रंग-जगत हैरान हुआ कि यह किस तरह का थिएटर है। प्रोसेनियम थिएटर से इतर यह उनके लिए अलग ही तरह का तजुर्बा था।

संपादकीय

रंगमंच अब शिक्षा व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग बनता जा रहा है इसी को ध्यान में रखते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय ने टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना की है जो इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

•

हाल ही में आयोजित वनमाली कथा सम्मानों की एक ख़ासियत यह रही कि उसमें पहली बार हिन्दी भाषा के उपन्यास के लिए बुकर सम्मान प्राप्त करने वाली लेखिका गीतांजलिश्री को वनमाली कथा सम्मान से अलंकृत किया गया। व्यापक हिन्दी समाज की ओर से शायद यह उनकी पहली बड़ी स्वीकृति थी, लेकिन उन्हें बुकर सम्मान घोषित होने के बाद हिन्दी का साहित्यिक समाज अजीब तरह से, किन्तु अपनी प्रकृति के अनुरूप, व्यवहार कर रहा है। ख्यात पत्रकार अजय बोकिल कहते हैं कि लगता है हम हिंदी वाले ख़ुश होना भी भूल गए हैं। हिदी कथाकार, उपन्यासकार गीतांजलिश्री के मूल हिंदी 'रेत समाधि' के अंग्रेजी में अनूदित उपन्यास 'टूम ऑफ़ सेंड' को मिले प्रतिष्ठित बुकर पुरस्कार की सुखद बयार भी आपसी तू-तू मैं-मैं, ख़ेमाई चश्मों और मेरे-तेरे के दुराग्रहों के बीच गोते लगा रही है। गीतांजलि के कृतित्व के बजाए बहस उस तकनीकी बिंदु की ओर मोड़ने की कोशिश जारी है कि पुरस्कार मूल कृति को मिला या अनुवाद को? यानी पुरस्कृत अनुवाद का क्या जश्न मनाना? यह सोच मूल रचना तो छोड़िए अनुवाद की महत्ता को लेकर हमारी कमतर सोच को प्रकट करती है। कुछेक लेखकों, साहित्य मनीषियों ने इस पर ख़ुशी ज़ाहिर की और इसे 'हिंदी में नई सुबह' तक कहा, लेकिन कुल मिलाकर इस अंतर्राष्ट्रीय कामयाबी पर हिंदी जगत का रुख़ उपेक्षा और उपहास भरा ज़्यादा दिखा। सबसे ज़्यादा निराशाजनक रवैया उन राजनेताओं का रहा, जो हिंदी की बदौलत ही अपने काम और राजनीति का डंका बजवा रहे हैं। बुकर विजेता गीतांजलि के लिए बधाई का एक लाइन का ट्वीट तक नहीं।

•

प्रख्यात ललित निबंधकार श्यामसुंदर दुबे ने जल का बहुत ही विशद लोक चिंतन इस अंक में किया है। इसी प्रवाह में आइये इस सम्पादकीय का समापन श्रीराम परिहार के सुन्दर गद्य से करें जो उन्होंने पानी के संदर्भ में लिखा है- ''हमारे पास पानी के कितने रंग हैं। कितने संदर्भ हैं। कितने संबंध हैं। कितने संवाद हैं। कितने पनघट हैं। कितने घाट हैं। कितनी यात्राएँ हैं। कितनी स्मृतियाँ हैं। कितने अनुष्ठान हैं। कितने पर्व हैं। कितने प्रसंग हैं। कितने उत्सव हैं। कितने अर्घ्य हैं। कितने आचमन हैं। कितने तीर्थ हैं। कितने विसर्जन हैं। कितने चिंतन हैं। कितने सन्यास हैं। कितने योग हैं। कितने संयोग हैं। कितने राग हैं। कितने कलकल हैं। कितने कलरव हैं। कितने स्नान हैं। कितने दीपदान हैं। कितने फूलों से भरी झबरिया हैं। कितने मंत्रों से भरी डगरिया हैं। कितनी धाराएँ हैं। कितनी सहस्त्रधाराएँ हैं। कितनी पद-यात्राएँ हैं। कितनी परिक्रमाएँ हैं। कितनी मानताएँ हैं। कितनी कथाएँ हैं। कितनी गाथाएँ हैं। कितनी कंदुक-क्रीड़ाएँ हैं। कितने वंशीरव हैं। कितने मिलन के लिए आतुर त्रेता हैं। कितने प्रतीक्षारत द्वापर हैं। कितने वरुण, जलधार बनकर बहते रहे। कितने इंद्रधनुष सपनों में रंग भरते हुए आकाश होते हैं।'' पानी पर यह अद्‌भुत कथन कितनी सतहें खोलता है?

•

'रंग संवाद' का यह अंक विश्व संगीत दिवस के अवसर पर प्रकाशित हो रहा है इसलिए शायद यह कहना उचित होगा कि कविता और चित्रकला की तरह प्रत्येक कला अंत में संगीत बन जाना चाहती है, उसी तरह दिल में उतरना चाहती है, और एक पवित्र अनुभूति की तरह हृदय में फैल जाना चाहती है। कलाओं में आनन्द की सृष्टि शायद इसी अनुभूति के साथ होती है। पंडित शिवकुमार शर्मा संगीत के ऐसे ही सर्जक थे जो श्रोता को रस की अनुभूति से भर देते थे।

•

रंग संवाद का यह अंक आपको कैसा लगा जरूर बताइयेगा।

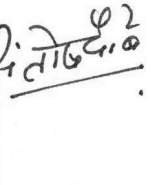

संतोष चौबे
प्रधान संपादक

संघर्ष की पटकथा

विनय उपाध्याय

आज़ादी का संघर्ष, वतन परस्तों का त्याग, संकल्पों का संदेश हमारी धरोहर है। लेकिन हमारी चेतना में कभी हमारा बीता कल कौंधता है? क्या हम आज़ादी के उसूलों की हिफ़ाज़त के फ़र्ज़ ठीक से अदा कर रहे हैं? इसी प्रश्नाकुलता और बेचैनी की बुनियाद पर रामवल्लभ आचार्य की कलम चल पड़ी। वे काव्य शैली में 1857 से 1947 तक की सैर कराते ज्वलंत अतीत को उजागर करते हैं। रेडियो और दूरदर्शन से लेकर रंगमंच तक इस रूपक ने ख़ासा रोमांच और उद्वेलन जगाया। इसके संयोग की भी एक रोचक कहानी है।

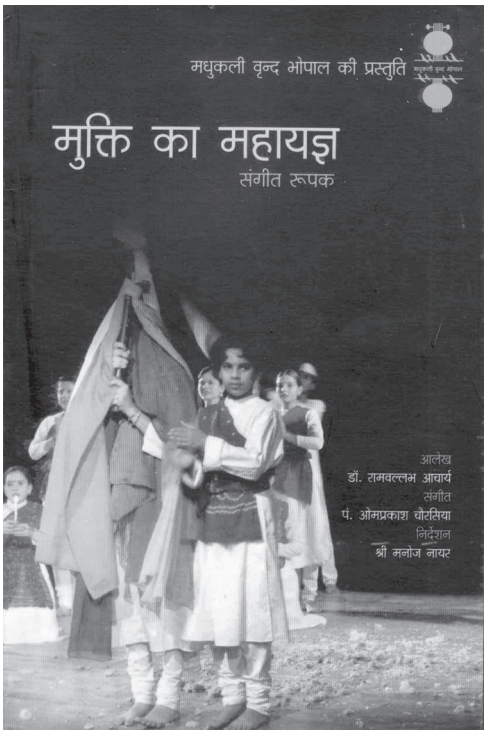

आज़ादी के अमृत महोत्सव के निमित्त स्वराज और स्वाधीनता के पहलुओं को जब नए सिरे से याद करने और देखने-परखने का सिलसिला जारी है तब 'मुक्ति का महायज्ञ' शिद्दत से ज़हन में कौंधता है।

सिद्ध गीतकार और लेखक रामवल्लभ आचार्य की लेखनी से रचा यह एक ऐसा अनुपम रुपक है जिसने रेडियो और दूरदर्शन से लेकर रंगमंच तक ख़ासा रोमांच और उद्वेलन जगाया। आचार्य हिन्दी के आखर जगत में आलोकित एक ऐसे शब्द-शिल्पी के रुप में समादृत हैं जिनके गीत अनूप जलोटा, हरिओम शरण और प्रभंजय चतुर्वेदी से लेकर कल्याण सेन और कीर्ति सूद जैसे जाने-माने गायकों की आवाज़ में प्रसिद्धि के गगन नापते रहे हैं। निश्चय ही रचनात्मक कसौटी पर यह रुपक एक अनुभव समृद्ध लेखक के कला-कौशल का प्रमाण है।

इस रूपक के लंबे पाठ से गुज़रते हुए उत्सर्ग की गाथाएँ हेरने लगती हैं। ग़ुलामी के कसैले एहसासों को जीते हुए एक दिन अचानक भारतवासियों की बुझी आँखों में आज़ादी का सपना लहलहाया था। समय ने करवट ली। एक दिन ऐसा आया जब सारे मुल्क़ ने आज़ाद हवाओं में साँसें लेना शुरु किया। लेकिन यह पलक झपकते पूरा होने वाला सपना नहीं था, इस रोमांच के पीछे बरसों का संघर्ष है। सामूहिक समर्पण और एकता की मिसालें हैं।

इतिहास के पन्नों पर नज़र जाती है तो अंग्रेज़ी हुकूमत और ज़ुल्मों-सितम से जुड़ी एक-एक तारीख़ उभरती है। लेकिन मुक्ति के लिए छटपटाते हमारे मुल्क ने संगठित जन प्रतिरोध का स्वर मुखर किया। सच्चे राष्ट्रभक्त लामबंद हुए। प्रभावी नेतृत्व प्रकट हुआ हुआ और कश्मीर से कन्याकुमारी तथा गुवाहाटी से चौपाटी तक स्वाधीनता का आंदोलन हर देशवासी का मक़सद बन गया। सिलसिला शुरु हुआ 1857 से। चिन्गारी शोला बनती

गई। हौसलों की रोशनी में आज़ादी के अरमान वक़्त की राहों पर क़दम बढ़ाते रहे। 15 अगस्त 1947 की सुबह भारत की भाग्य रेखा ने दुनिया के इतिहास में महाविजय की इबारत उकेर दी। ...आज़ादी का यह संघर्ष, वतन परस्तों का त्याग, संकल्पों का संदेश आज हमारी धरोहर है। लेकिन क्या हमारी चेतना में कभी हमारा बीता कल कौंधता है? क्या हम आज़ादी के उसूलों की हिफ़ाज़त के फ़र्ज़ अदा कर रहे हैं?

इसी प्रश्नाकुलता और बेचैनी की बुनियाद पर रामवल्लभ आचार्य की कलम चल पड़ी। वे काव्य शैली में 1857 से 1947 तक की सैर कराते ज्वलंत अतीत को उजागर करते हैं।

इस रूपक के लिखे जाने के संयोग की भी एक रोचक कहानी है। वर्ष 1997–98 को शासन द्वारा स्वतंत्रता के स्वर्ण जयंती वर्ष के रूप में मनाने की घोषणा की गयी थी। तब साल भर स्वतंत्रता संग्राम पर आधारित गतिविधियाँ आयोजित करने का निर्णय लिया गया था। इसी तारतम्य में दूरदर्शन द्वारा कमीशन्ड कार्यक्रमों के लिये कुछ विषय निर्धारित किये गये थे जिनमें एक विषय स्वतंत्रता संग्राम संबंधी गीतों की सांगीतिक प्रस्तुति का भी था। प्रस्ताव जमा करने की अंतिम तिथि से एक दिन पूर्व सायंकाल आचार्यजी के मित्र ने स्वतंत्रता संग्राम पर केन्द्रित 10 गीत माँगे। अगले दिन सुबह 10 बजे के पूर्व उन्हें ये गीत देने थे। रामवल्लभजी बताते हैं कि उस रात लगभग दो बजे उनकी नींद खुली और स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि मन–मस्तिष्क में घूमने लगी। धीरे–धीरे एक के बाद दूसरे गीत की रचना होती गयी। इस तरह आठ गीत सुबह छह बजे तक लिखा गये। तब दो पूर्व रचित राष्ट्र भक्ति गीत मिलाकर दस गीत उन्हें समय से पूर्व दे दिये। दूरदर्शन ने प्रस्ताव जमा कर दिया लेकिन वह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ। ज़ाहिर है कि आचार्यजी को निराशा तो हुई किन्तु बाद में इनमें से पाँच गीतों को लेकर स्वतंत्रता के 90 वर्ष के संग्राम पर संगीत रूपक बनाने का विचार उन्हें आया। इस पूरे इतिहास को मात्र 10–12 मिनिट में समेटना एक चुनौती थी और चुनौती यह भी थी कि यह सब विश्वसनीय, प्रामाणिक और निर्विवाद हो। आचार्यजी के अनुसार उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की पुस्तकें पढ़ीं, नोट्स लिये, घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण संकलित किया और प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों की जानकारी संकलित की। इसके बाद रूपक का एक ढाँचा तैयार किया। अनुभव किया कि इस संग्राम के मुख्यत: चार पक्ष थे। पहला 1857 की असफल क्रांति का जिसमें विभिन्न राजे–रजवाड़ों का अंग्रेज़ी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष था। दूसरा महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अहिंसक आन्दोलन तथा तीसरा विप्लवी क्रान्तिकारियों का सशस्त्र प्रतिरोध था। चौथा पक्ष था नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आज़ाद हिन्द फ़ौज का सैन्य अभियान।

अन्त में सूत्रधार द्वारा वर्तमान स्थितियों पर चिंतन की आवश्यकता प्रतिपादित करता यह संगीत रूपक मुकम्मल हुआ। इसे आकाशवाणी भोपाल के संगीत विभाग को प्रेषित किया। कुछ दिन बाद आचार्यजी को सूचित किया गया कि 15 अगस्त को दिनभर ज़िला स्थानों पर होने वाले कार्यक्रम प्रसारित किये जायेंगे अत: इसका प्रसारण संभव नहीं होगा। कुछ दिन बाद भोपाल के समाचार पत्रों में पं. लालमणि मिश्र संगीत समारोह में 'मधुकली वृन्द' द्वारा वृन्दगान प्रस्तुति का समाचार पढ़ा तो पं. ओमप्रकाश चौरसिया जी को इस संगीत रूपक की प्रति उन्होंने दी।

बकौल आचार्य, स्वतंत्रता की स्वर्णजयंती के समापन के अवसर पर आकाशवाणी ने यह पांडुलिपि माँगी और इसके प्रसारण का अनुबंध कर लिया। 12 अगस्त को होने वाले पं. लालमणि मिश्र संगीत समारोह में भी इसकी प्रस्तुति का रास्ता खुल गया। भोपाल के रवीन्द्र भवन में मधुकली द्वारा इसे वृन्दगान के रूप में लगभग तीस वृन्द गायकों ने पेश किया और इस प्रस्तुति को व्यापक सराहना मिली। अनेक लोगों के आग्रह पर इसकी ऑडियो सीडी तथा कैसेट बनवाकर रिलीज़ किये गये। फिर किसी के सुझाव पर इसे रंगकर्मी मनोज नायर की कोरियोग्राफी के साथ पुन: प्रस्तुत किया गया तो इसका अद्‌भुत प्रभाव हुआ। इसके बाद इसकी वीडियो सीडी भी बनायी गयी। इसकी चर्चा देश भर में हुई और अनेक आयोजनों ने इसकी प्रस्तुति के लिये चौरसिया जी से संपर्क किया गया। बाद में इसकी प्रस्तुतियाँ भारत भवन भोपाल, मानव संग्रहालय भोपाल के अलावा सीहोर, सागर एवं अन्य स्थानों के साथ ही बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के सभागार में भी की गईं। दूरदर्शन से भी इसका प्रसारण कई बार हुआ।

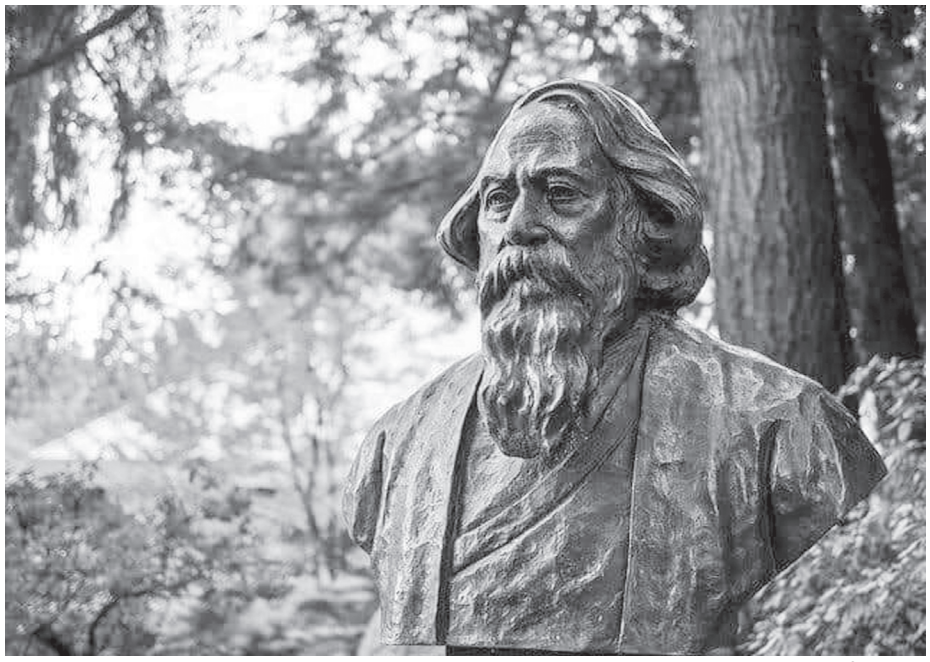

छाया: श्रुति कुमुद

शांति निकेतन का आदर्श

मूल लेखक: अम्लान दत्त

अनुवाद: उत्पल बैनर्जी

रवीन्द्रनाथ टैगोर आज भी दोनों बंगाल में ईश्वर की भाँति पूजित हैं। उनकी कविताएँ बंगाल के लहू में ऊर्जा और उल्लास का स्रोत बनकर बह रही हैं और उनके गीतों के गुंजन से बंगाल हर रोज़ सुबह आँखें खोलता है और रात अपनी पलकें मूँदती है। वहाँ रवीन्द्र के बिना जीवन की कल्पना की ही नहीं जा सकती। लेकिन उनके सपनों का शिक्षालय शांतिनिकेतन, विश्वभारती आज विवादों के घेरे में है। यह विवाद स्वप्न और यथार्थ का है, मूल्य और व्यावहारिकता का है, यह द्वन्द्व विगत और आगत का है। शुरु से ही शांतिनिकेतन को लोग अव्यावहारिक संस्था के रुप में चिह्नित करते रहे हैं और उसकी शिक्षा–पद्धति को लेकर लगातार आलोचना का बाज़ार गर्म रहता आया है। इसी संवेदनशील मुद्दे पर रवीन्द्र साहित्य विशेषज्ञ और बंगला भाषा के स्कॉलर अम्लान दत्त ने सुविचारित आलेख लिखा है। यहाँ उस आलेख का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत है। - **अनुवादक**

शांति निकेतन की शिक्षा–व्यवस्था के ख़िलाफ़ एक पुराना अभियोग बहुत दिनों से चला आ रहा है कि वहाँ के आश्रम और आसपास का परिवेश सुंदर तो है लेकिन वास्तविकता से परे है। अपना वैभव खो चुके हमारे वृहत्तर जगत के साथ उनका कोई मेल नहीं। रवीन्द्रनाथ के आश्रम में विद्यार्थी यथार्थ संसार से रूबरू होना नहीं सीखते। यही है अभियोग।

प्रचलित शिक्षा–व्यवस्था के ख़िलाफ़ बचपन से ही कवि के मन में एक वितृष्णा जमने लगी थी। लेकिन जिस समाज और शिक्षा–पद्धति के ख़िलाफ़ उनका विद्रोह था, शांतिनिकेतन की शिक्षा–व्यवस्था उसके अनुकरण की निर्मिति नहीं थी, बल्कि एक आदर्श को रूपायित करने की कोशिश में ही रवीन्द्रनाथ जी–जान से जुटे हुए थे।

शिक्षा के संबंध में उनकी कुछ मूल धारणाएँ थीं। उन सब धारणाओं से कुछ लोगों का थोड़ा, तो कुछ लोगों का ख़ासा परिचय था। प्रकृति के साथ बच्चों का सहज साहचर्य स्वाभाविक ही है। इस साहचर्य की रक्षा करते हुए ही बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। विश्व चराचर में हर दिन नियम से बँधकर कितनी ही आश्चर्यजनक घटनाएँ घट रही हैं। कंबलकीड़े से मानो किसी जादूगर के मंत्र से तितलियाँ निकल कर आ रही हैं, पक्षी कमाल की निपुणता के साथ घोंसले बना रहे हैं, ज़मीन के भीतर धूसर रंग के एक बीज से अचानक सुबह की उजास की पुकार पर आवाज़ देते हुए दो नन्हें–नन्हें हरे हाथ ऊपर उठाकर छोटा–सा पौधा जता देता है कि वह जाग उठा है, आकाश की देह पर सतरंगा इंद्रधनुष चित्रित हो रहा है, बियाबान दोपहर की चुप्पी को चूरचूर करता तूफ़ान चला आता है दिगंत से। आँखें खोलो तो विस्मय का कोई अंत नहीं। इन सबकी छुअन

से शिशु-मन की कल्पना और कौतूहल दिन-ब-दिन बढ़ते जाते हैं। इन सबसे जुदा कर जो कुछ भी सिखाया जाता है, वह यांत्रिक होता है, विश्व के साथ मनुष्य के हृदय को जोड़ने वाली शिक्षा इससे पूरी नहीं होती।

केवल प्रकृति की घनिष्ठता नहीं, शांतिनिकेतन में रवीन्द्रनाथ लोगों के एक आत्मीय समाज को गढ़ने का प्रयास कर रहे थे। वह आत्मीयता ख़ून के रिश्तों पर आधारित नहीं थी बल्कि विश्व के भिन्न-भिन्न स्थानों से लोग आकर एक गर्माहट भरी सहृदयता लिए शांतिनिकेतन के नीड़ में संघबद्ध होंगे, कवि ने यह उम्मीद की थी। आत्मीय समाज के साथ संपर्क भी शिक्षा की पूर्णता के लिए आवश्यक है।

दु:ख के आवरण को भेद कर इंसान आनंद की खोज में लगा हुआ है। यही मनुष्य का विशुद्ध स्वभाव है। आनंद ही सृष्टि का उत्स है। यही रवीन्द्रनाथ का विश्वास था। आनंद से तात्पर्य यहाँ पर मिलन के आनंद से है, जो सुख किसी को पीड़ा पहुँचाए उसके मूल में रहती है स्वभाव की विकृति। इसीलिए शांतिनिकेतन की वार्षिक जीवनधारा में मेलों और ऋतु-उत्सवों का एक ख़ास स्थान है। मेले के नाम पर केवल ख़रीदी और बिक्री का आयोजन नहीं होता, वह लोगों के मेल-मिलाप का एक अनूठा अवसर भी होता है। प्रकृति के छंद के साथ मनुष्य के हृदय को मिलाकर उसी का आनंद-उच्चरण ही ऋतु-उत्सव का मूल प्रयोजन है। हमारे देश में तीज-त्योहारों का अभाव नहीं है। लेकिन इनके साथ सम्प्रदाय विशेष के धर्म का प्रत्यक्ष संबंध स्थापित हो गया है। रवीन्द्रनाथ ने वार्षिक उत्सव को साम्प्रदायिक भेदों से यथासंभव मुक्त कर शुद्ध आनंद की अभिव्यक्ति के रूप में संपूर्ण मानवता के लिए प्रतिष्ठित करना चाहा था। वे 'स्कूल' नामक वस्तु को उपेक्षा की नज़रों से देखते थे। उनके शिक्षादर्श के केंद्र में थी मनुष्य के आनंद की साधना।

प्रकृति के साथ संलग्न यह जो आत्मीय समाज की उत्सव और अनुष्ठान से पूरित और विशिष्टताओं से परिपूर्ण जीवन-यात्रा है, हमारी जो परिचित और कलुषित दुनिया है, उससे बहुत भिन्न है। और यहीं से आता है वह पुराना अभियोग, जिसका मैंने पूर्व में उल्लेख किया था। शांतिनिकेतन के विद्यार्थियों को तो एक दिन बाहरी दुनिया में क़दम रखना ही होगा, सभी विद्यार्थियों के लिए आजीवन आश्रम में रहना तो संभव नहीं। तो क्या शांतिनिकेतन की शिक्षा उन लोगों को बाहरी दुनिया की तमाम विषम परिस्थितियों के बीच आत्मरक्षा के लिए तैयार कर सकी है?

यहाँ पर मूल प्रश्न असल में शिक्षा के उद्देश्य को लेकर है। हम लोग यथार्थ परिस्थितियों के साथ संतुलन बनाकर चलते हैं। परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाकर चलने की क्षमता अधिकांश लोगों में होती ही है। उस क्षमता को थोड़ा और शिक्षित करना ही क्या शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है? या कि एक आदर्श के साथ प्राणों का परिचय करवाना, उस आदर्श के अनुरूप स्वयं को तथा अपने आसपास को नए सिरे से रचने की आकांक्षा जगाना, शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है? शांतिनिकेतन के विद्यार्थी जो विभिन्न जगहों पर काम कर रहे हैं, वे अपने परिवेश के साथ संघर्ष नहीं कर पाए, ऐसे उदाहरण ज़्यादा नहीं हैं। जीवन के तमाम आँधी-तूफ़ानों में भी शांतिनिकेतन की शिक्षा ने उन्हें आत्मस्थ रहने की शक्ति दी थी, ऐसा इंदिरा गाँधी ने कहा था। तो क्या यह बात एकदम ग़लत है? ऑक्सफ़ोर्ड हो या फिर नालंदा हो, विश्व के सर्वकालिक श्रेष्ठ विश्वविद्यालय संसार के कोलाहल से थोड़ी दूर ही स्थित थे। आज के यथार्थ जीवन के अनुकरण के आधार पर किसी भी आदर्श विद्यालय की स्थापना नहीं हो सकती।

लेकिन बात यहीं ख़त्म नहीं होती, कुछ सवाल रह ही जाते हैं। ज़िंदा रहने के लिए एक जीविका चाहिए ही। विद्यार्थी अगर आत्मनिर्भर होना चाहते हैं तो उन्हें किसी न किसी वृत्ति में निष्णात होना ही होगा। शांतिनिकेतन ने क्या इस ओर ध्यान दिया है? इस सवाल पर विस्तार से चर्चा करना ज़रूरी है।

अंग्रेज़ों के ज़माने में हमारे देश में जो शिक्षा-व्यवस्था तैयार हुई, उसके साथ नौकरी का बहुत क़रीबी रिश्ता था। 19वीं शताब्दी की शुरुआत से ही देश की शासन-व्यवस्था के भिन्न-भिन्न स्तरों पर क्लर्क से लेकर डेप्यूटी तक जिन कर्मचारियों की ज़रूरत पड़ी, वे सभी अंग्रेज़ी माध्यम वाले स्कूलों और कॉलेजों से पढ़कर आए विद्यार्थी ही थे। शिक्षा प्रतिष्ठानों का एक और काम होता है शिक्षक तैयार करना। इसके अलावा डॉक्टर, इंजीनियर, वकील आदि की भी दरकार होती है। इस देश के नव-मध्यवर्ग वाला बाबू-सम्प्रदाय भी अंग्रेज़ी शिक्षा-व्यवस्था की ही संतान है।

कर्मचारी तैयार करना शांतिनिकेतन का उद्देश्य कभी नहीं रहा। वकील, इंजीनियर, डॉक्टर तैयार करने वाले कॉलेज अभी तक वहाँ नहीं खोले गए हैं। इस अर्थ में विश्व भारती एक अधूरा विश्वविद्यालय है। यहाँ कहना ठीक होगा कि शांतिनिकेतन ने एक-जैसे ढर्रे पर चलने वाले विश्वविद्यालयों-जैसा नहीं होना चाहा। ब्रह्मचर्य विद्यालय से वहाँ की शिक्षा-व्यवस्था आरंभ होती है। रवीन्द्रनाथ के तत्कालीन शिक्षादर्श के साथ इस ब्रह्मचर्य विद्यालय का सामंजस्य

सबसे अधिक था। बाद में विश्वभारती की स्थापना हुई थी। देश-विदेश के विद्वानों को आमंत्रित करना, पूर्व और पश्चिम की भाषा, धर्म और इतिहास में रुचि रखने वाले गुणी लोगों के लिए एक मिलनभूमि निर्मित करना, विश्व संस्कृति की विविधता के भीतर ऐक्य की खोज करना, यही उन दिनों के विश्वभारती का मुख्य लक्ष्य हुआ करता था। इसके अतिरिक्त शांतिनिकेतन की एक और विशिष्टता संगीत और कलाभवन था। इनका भी मूल सुर समन्वय और सृजनधर्मिता ही था।

फिर भी अंत में नौकरी के सवाल को स्थगित करना संभव नहीं हो सकता। रवीन्द्रनाथ के जीवित रहते हुए ही डिग्री प्रदान करने की व्यवस्था की गई और इसके लिए कोलकाता विश्वविद्यालय के साथ जुड़ना अनिवार्य हो गया। यहीं से शांतिनिकेतन में दो असमंजस भरे भावों की, अस्थिर दशा में, एकसाथ रहने की शुरुआत हो गई। डिग्री के साथ-साथ पुराने ढर्रे पर चला आ रहा पाठ्यक्रम, परीक्षा की व्यवस्था और नौकरी के बाज़ार के साथ जुड़ाव ... एक साथ ये सारी बातें भी आ जुड़ीं।

इन सबके साथ शांतिनिकेतन के मूल आदर्शों का कोई मेल नहीं था। शांतिनिकेतन की मिट्टी से इन्हें कोई ख़ास पोषण प्राप्त नहीं हो सका था। यही कारण था कि 'विद्याभवन' या 'शिक्षाभवन' के परंपरागत विभाग उतने उत्कृष्ट नहीं थे। इस ओर से समालोचकों के अभियोग बेबुनियाद नहीं थे।

तो फिर क्या रवीन्द्रनाथ के शिक्षा-चिंतन में जीविका के प्रयोजन वाला आयाम उपेक्षित रह गया था? नहीं, ऐसा नहीं था। रवीन्द्रनाथ के

केवल प्रकृति की घनिष्ठता नहीं, शांतिनिकेतन में रवीन्द्रनाथ लोगों के एक आत्मीय समाज को गढ़ने का प्रयास कर रहे थे। वह आत्मीयता ख़ून के रिश्तों पर आधारित नहीं थी बल्कि विश्व के भिन्न-भिन्न स्थानों से लोग आकर एक गर्माहट भरी सहृदयता लिए शांतिनिकेतन के नीड़ में संघबद्ध होंगे, कवि ने यह उम्मीद की थी। आत्मीय समाज के साथ संपर्क भी शिक्षा की पूर्णता के लिए आवश्यक है।

शांति निकेतन : प्रकृति के सानिध्य में जीवन का पाठ

श्रीनिकेतन का 'पाठभवन'

श्रीनिकेतन का अपना निजी विद्यालय 'शिक्षासत्र' है। शांतिनिकेतन के 'पाठभवन' से यह भिन्न है। 'पाठभवन' के विद्यार्थियों में से ज़्यादातर शहरी परिवारों से आ रहे हैं, जबकि 'शिक्षासत्र' के विद्यार्थी मुख्य रूप से ग्रामवासी हैं। इनकी सामाजिक पृष्ठभूमि अलग है। रवीन्द्रनाथ चाहते थे कि इन्हें ग्रामीण जीवन की ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा प्रदान की जाए। अन्यथा शिक्षा के साथ अनुभव का सामंजस्य नहीं रहेगा, परिणामस्वरुप विद्या फिर से कृत्रिम और बाहर की वस्तु बनकर रह जाएगी। लेकिन 'शिक्षासत्र' के आदर्शों की रक्षा करते हुए शिक्षा प्रदान करने लायक शिक्षक नहीं मिलते। यहाँ एक दूसरा द्वन्द्व भी है। शहर का आकर्षण आज प्रबल हो उठा है। यह आश्चर्यजनक नहीं, दुखद है।

इस आयाम को समझने के लिए हमें अपनी नज़र मुख्य रूप से श्रीनिकेतन की ओर घुमानी पड़ेगी। वहाँ पर 'ग्राम संगठन विभाग' की स्थापना की गई थी। नौकरी करने वाले नव-मध्यवर्ग के लिए नहीं, गाँवों के दरिद्र लोगों की जीविका के सवाल को लेकर रवीन्द्रनाथ की चिंताओं का कोई अंत नहीं था। कवि के बेटे ग्रामीण उद्योगों की उन्नति के प्रयासों में सहभागी थे। रवीन्द्रनाथ के आग्रह पर ही यह सब संभव हो सका था। कृषि, समवाय और ग्रामोद्योग को लेकर उन्होंने जिस पैमाने पर चिंतन-मनन किया था, वैसी किसी और कवि से अपेक्षा की ही नहीं जा सकती। वस्तुत: इन सब मामलों में वे इस देश के अग्रणी नेता और चिंतकों की श्रेणी में ही आते हैं।

इस विषय में पहले उनके चिंतन के ढंग को समझना होगा। उदाहरण के तौर पर हम 'शिल्पसदन' को लेते हैं। रवीन्द्रनाथ की परिकल्पना की मूल बात ऐसी नहीं थी कि शिल्पसदन एक उत्पादन केंद्र-जैसा होगा और वहाँ कुछ लोगों को बँधी-बँधाई नौकरी मिलेगी। गाँव के लोग गाँव में ही औद्योगिक कार्यों में संलग्न रहेंगे। उन्हें वहीं पर उन्नत शिल्प कौशल मुहैया कराना होगा। जिस तरह किसान अपने गाँव में ही कृषि-कर्म में नियुक्त रहता है, उसे वहीं पर खेती-बाड़ी के उन्नत तरीक़ों की जानकारी, कौशल और उपकरण उपलब्ध कराना ज़रुरी होता है। शिल्पसदन का मुख्य कार्य ग्रामीण उद्योगों के क्षेत्र में ज्ञान और कौशल के प्रचार-प्रसार में ज़रूरत के हिसाब से लोगों का सहयोग भी लेना होगा। नौकरियों की संख्या बढ़ाकर गाँवों की आर्थिक समस्याओं को दूर नहीं किया जा सकेगा। गाँवों की उन्नति के लिए नए रास्ते तलाशने पड़ेंगे। शिक्षा, स्वावलंबन, समवाय रवीन्द्रनाथ ने इन्हीं बातों पर विशेष ज़ोर दिया था।

ग्राम संगठन विभाग के कार्यों में पहले-पहल अच्छे परिणाम दिखाई थे। रवीन्द्रनाथ के नेतृत्व में स्थानीय ग्रामोद्योग में कुछ उल्लेखनीय नयापन दिखाई दिया था। लेकिन वह धारा स्थायी नहीं हो सकी। शांतिनिकेतन में बनने वाली वस्तुएँ अब कोलकाता में भी बनने लगी हैं, इस प्रतियोगिता में शांतिनिकेतन पिछड़ रहा है। शिल्प सदन में स्थायी नौकरी की माँग को लेकर आंदोलन हो रहे हैं। गाँवों में अपने चुने हुए व्यवसाय और गुणवत्ता वाले उत्पादन में ग्रामीणों की रुचि नहीं है बल्कि विश्वभारती की सरकारी स्थायी नौकरी ही उन लोगों का मुख्य आकर्षण है। रवीन्द्रनाथ की 'पल्ली संजीवनी' साधना विफल हुई जा रही है।

शिक्षाव्यवस्था के साथ अर्थव्यवस्था का गहरा संबंध होता है। उस ओर एक बार फिर से देखा जाए।

हमारी अर्थव्यवस्था दो भागों में बँटी हुई है; इन दोनों के बीच के विभेद को किसी भी तरह से दूर करना संभव नहीं हो पा रहा है। एक ओर काफ़ी हद तक आधुनिक ढाँचे वाला संगठित वर्ग है और दूसरी ओर पुराने ढाँचे और ढंगवाला, अपेक्षाकृत दरिद्र और असंगठित वर्ग है। एक ओर हवाई जहाज़ है तो दूसरी ओर बैलगाड़ी है। यह असमानता आगे भी बहुत दिनों तक रहने वाली है इसका एक सहज कारण है। अर्थव्यवस्था के आधुनिक दायरे में पूँजी का घनत्व बहुत अधिक है, यानी प्रत्येक श्रमिक पर लग रही पूँजी बहुत ज़्यादा है। एक-एक हवाई अड्डे पर होने वाला ख़र्च बहुत अधिक है, उसकी तुलना में कर्मचारियों या श्रमिकों की आवश्यकता बहुत कम है। हमारी सीमित पूँजी के बल पर अर्थव्यवस्था के आधुनिक खंड में इस देश की विशाल और तेज़ी से बढ़ रही श्रमिकों की संख्या के थोड़े-से अंश को नौकरी उपलब्ध करा पाना संभव है। इसीलिए उनमें से ज़्यादातर को अर्थव्यवस्था के दरिद्र और असंगठित क्षेत्र में ही जीविका तलाशनी पड़ती रही है।

कृषि और ग्रामोद्योग-जैसे अत्यंत ज़रूरी कामकाज इस पुरातन क्षेत्र के अंतर्गत ही आते हैं। जो आधुनिक है उस का प्रचार अधिक है; जो पुरातन है उसका प्रसार अधिक है, भले ही उसका बहुत सारा बाहरी दुनिया की आँखों से ओझल ही रहता है।

हमारी शिक्षाव्यवस्था का ध्यान मुख्य रूप से अर्थव्यवस्था के संगठित तथा आधुनिक क्षेत्र पर ही केंद्रित रहता है। यहीं पर बहुत बड़ा अधूरापन है। असंगठित और पुरातन क्षेत्र को शिक्षाव्यवस्था की मदद के बिना ही आगे बढ़ना पड़ रहा है। इसका मतलब यह नहीं कि गाँवों से विद्यार्थी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले रहे हैं। लेकिन जो लोग प्रवेश ले रहे हैं उनमें से बड़ी संख्या में गाँव वापिस नहीं लौट रहे, उनका गंतव्य अर्थव्यवस्था का आधुनिक क्षेत्र बन जाता है। प्रशासन या फिर व्यवसाय तथा उद्योग के संगठित क्षेत्र में अपनी जगह बनाना ही उनका एकमात्र ध्येय बन जाता है। वस्तुतः आधुनिक शिक्षाव्यवस्था ख़ुद ही एक बड़ा व्यवसाय बन गया है, रवीन्द्रनाथ ने कम-अज़-कम समस्या की मूल प्रकृति को समझने में ग़लती नहीं की थी। हमारी अर्थव्यवस्था के असंगठित अंश को किस प्रकार संगठित किया जा सकता है, उसी का रास्ता पल्ली संगठन विभाग ने ढूँढ़ निकाला था।

समस्या को अब एक और कोण से देखा जाए। पिछली शताब्दी के आरंभ में बंगभंग के समय जिस राष्ट्रीय शिक्षापरिषद की स्थापना की गई थी और शिक्षा आंदोलन आरंभ हुआ था, रवीन्द्रनाथ उसके साथ जुड़े थे। अंग्रेज़ी शिक्षाव्यवस्था के परिणामस्वरुप इस देश के शिक्षित समुदाय स्वदेश की भावना से विच्छिन्न हो गए थे, इस विच्छेद को रोकना ज़रूरी था, शिक्षा के साथ देश के लोगों, देश के स्वार्थ और संस्कृति को जोड़ना होगा, एक इस प्रकार के बोध ने राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन के भीतर शक्ति का संचार किया था। इसी के आकर्षण में अरविन्द और रवीन्द्रनाथ जैसे लोग उस दिन आंदोलन से जुड़े थे।

इसके बाद आठ दशक बीत गए। राष्ट्रीय शिक्षा के नेता जिस विजातीयता के विरोधी थे, उसे क्या रोका जा सका? इस देश के शिक्षित लोगों में मातृभाषा के प्रति श्रद्धा के भाव थोड़ी भी मात्रा में बढ़े हैं या नहीं, कहना कठिन है। नया राष्ट्र बांग्लादेश निश्चित रूप से मातृभाषा के लिए एक विशेष सम्मान का हक़दार है, पश्चिम बंगाल में ऐसा दावा नहीं किया जा सकता। कॉलेज और विश्वविद्यालय के अच्छे विद्यार्थियों में तमाम वजहों से अंग्रेज़ी के प्रति आकर्षण प्रबल है। यथासंभव जल्दी से विदेश जाना अगर उद्देश्य है तो फिर विदेशी भाषा में दक्षता ही विशेष रूप से ज़रूरी है। विश्व की संस्कृति के साथ परिचय अवश्य काम्य है। स्वदेशप्रेम यदि लोगों को विश्वविमुख कर दे तो फिर वह प्रशंसनीय नहीं है। रवीन्द्रनाथ को तो किसी भी प्रकार से विश्वविमुख नहीं कहा जा सकता। लेकिन वे जानते थे कि अन्य कोई भी भाषा मातृभाषा का स्थान नहीं ले सकती। अगर लेना चाहे तो इससे एक दिन देश में एक गहरा विभेद पैदा हो जाएगा, दूसरी ओर हम अपने चित्त का स्वराज्य भी खो देंगे।

हमारे अंग्रेज़ी में शिक्षित समुदाय के लोग जिस परिमाण में मातृभाषा से विच्छिन्न हैं, उसी परिमाण में देश के लोगों से भी विच्छिन्न हैं। यहाँ तक कि विद्यार्थी-समाज के अभ्यंतर में अब एक भयंकर सांस्कृतिक विभेद आ गया है। विदेशी संस्कृति के प्रति जो लोग प्रबल रूप से अनुरक्त हैं और दूसरी ओर जो लोग देश की माटी के साथ गहरे जुड़े हैं, ये दो समुदाय मानो दो विपरीत शिविरों में बँटे हुए हैं। यह दोनों के लिए ही हानिकारक है। इसके फलस्वरुप उत्तेजना से भरा एक माहौल बनने लगा है। एक-दूसरे के प्रति नफ़रत की भावना की अतिशयता के कारण एक समूह सांप्रदायिक हुआ जा रहा है तो दूसरा अपने देश के प्रति श्रद्धाहीन। यह सांस्कृतिक विभेद देश को एक निराशाजनक संकट की ओर ठेल रहा है।

इन सारे द्वन्द्वों में रवीन्द्रनाथ का कभी इस पक्ष तो कभी उस पक्ष के वकील के रूप में उपयोग किया जाता रहा है। यह उनके प्रति अन्याय है। भले ही उन्होंने किसी ख़ास मौक़े पर कभी इधर तो कभी उधर की बात ज़ोर देकर कही थी, फिर भी द्वन्द्वों को अतिक्रमित करने की मेधा और औदार्य में वे औरों से कहीं आगे हैं।

उनकी तमाम छोटी-छोटी बिखरी हुई उक्तियों में से इस मूल भाव को ढूँढ़ लेने की ज़रूरत है। जैसे कि एक चर्चित विषय है: शिक्षा में भाषा का स्थान। 'शिक्षा के वाहन' विषयक प्रबंध में रवीन्द्रनाथ ने कहा है, ''विद्या के विस्तार की बात को जब मैं ध्यान से देखता हूँ तब उसमें सबसे बड़ी बाधा मुझे यह दिखाई देती है कि उसका वाहन अंग्रेज़ी है।'' और उन्होंने ही शांतिनिकेतन के सर्वाध्यक्ष जगदानंद राय को विदेश से लिखा है, ''अभी उस दिन के अख़बार में मैंने पढ़ा कि महात्मा गाँधी ने हमारी लड़कियों से कहा है कि तुम लोग अंग्रेज़ी पढ़ना बंद कर दो, उस दिन मैं समझ गया कि हमारे देश में दीवार उठनी शुरु हो गई है, यानी अपने घर को ही अपना कारागार बनाने को ही हम लोग मुक्ति समझने लगे हैं।'' रवीन्द्र-चिंतन का वैशिष्ट्य उनकी समन्वयधर्मिता है।

ग़रीबी नाम की बीमारी को जिस प्रकार दवाइयों से ठीक नहीं किया जा सकता, हमारी अर्थव्यवस्था की सारी समस्याओं को केवल शिक्षा व्यवस्था के द्वारा दूर करना संभव नहीं। शांतिनिकेतन के शिक्षा-गुरुओं के हाथों में इतनी शक्ति नहीं थी कि वे लोग दरिद्रता को दूर कर सकें। लेकिन इस वजह से ग्राम संगठन के लिए रवीन्द्रनाथ ने जो सोचा था, वह निरर्थक नहीं हो जाता। आज निश्चित रुप से हालात बदल गए हैं, इसलिए समाधानों, उपायों को लेकर भी नई सोच ज़रूरी है। आज जब पंचायती शासन के दिन आए हैं तब रवीन्द्रनाथ की सोच को पंचायत के नेताओं तक ले जाना ज़रूरी है। इसमें ग़ैरसरकारी सेवा-प्रतिष्ठानों की भूमिका को भी स्वीकार करना होगा। बाधाएँ आएँगी। इस पर जमकर राजनीति भी हो सकती है। फिर भी रवीन्द्रनाथ की स्वदेशी समाज की धारणा आज भी मूल्यवान है।

गुरुदेव का देहावसान हुए आधी से ज़्यादा सदी बीत गई है। फिर भी शांतिनिकेतन की अपनी एक विशिष्ट विचारधारा और स्वर है। उसकी उपेक्षा करने से देश को ही नुकसान होगा। इस देश का समाज और संस्कृति आज भी जिन विरोधाभासों से दो-चार हो रहे हैं, जैसे कि रोज़गारमूलक शिक्षा के साथ पूर्ण-मनुष्यता की शिक्षा का विरोध, ग्राम और नागरिकता का परस्पर विरोध, दो असमन्वित संस्कृतियों के आपसी विरोधाभास आदि, शांतिनिकेतन हमें सदाशयता के साथ सचेत होने तथा प्रयास करने के लिए प्रेरित करता है।

इसमें राजनीति ही एकमात्र बाधा नहीं है। सांस्कृतिक बाधा को भी नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। एक ओर आज भी हमारे ग्रामीण समाज में जातियों और सम्प्रदायों का द्वन्द्व चल रहा है, वहीं दूसरी ओर शांतिनिकेतन के प्रांगण में भी विदेशी संस्कृति की लहर आ पहुँची है। उत्तेजक द्रुत ताल में निबद्ध संस्कृति। केवल विदेशी होने के कारण ही कुछ अश्रद्धेय नहीं हो जाता। लेकिन इस नई संस्कृति में केवल एक मादकता ही है, ऐसा नहीं है, यह एक ऐसी जीवनयात्रा के साथ युक्त है, जो इस दरिद्र देश के अधिकांश लोगों की जीवनयात्रा नहीं हो सकती। इसके आकर्षण की वजह से बल का नाश करने वाले भोगवाद जनित प्रतिद्वन्द्विता के कारण व्यक्ति के मन में हताशा बढ़ती है, दूसरी ओर समाज के अभ्यंतर में विभेद का विस्तार होता चलता है। रवीन्द्रनाथ जानते थे कि मिलन में मंगल निहित है। संस्कृति के क्षेत्र में आज एक नया द्वन्द्व दिखाई दे रहा है। द्वन्द्व के स्वरूप को समझकर हमें नए सिरे से मिलन का रास्ता ढूँढ़ना होगा। किसी भी चीज़ को पूरी तरह ख़ारिज नहीं किया जा सकता। एक पूर्णता के भीतर उसे किस तरह स्थापित किया जा सकता है, यही बड़ा सवाल है।

रवीन्द्रनाथ की मृत्यु के बाद आधी से ज़्यादा सदी बीत गई है। फिर भी शांतिनिकेतन की अपनी एक विशिष्ट विचारधारा और स्वर है। उसकी उपेक्षा करने से देश को ही नुकसान होगा। इस देश का समाज और संस्कृति आज भी जिन विरोधाभासों से दो-चार हो रहे हैं, जैसे कि रोज़गारमूलक शिक्षा के साथ पूर्ण-मनुष्यता की शिक्षा का विरोध, ग्राम और नागरिकता का परस्पर विरोध, दो असमन्वित संस्कृतियों के आपसी विरोधाभास आदि, इन सबके बारे में शांतिनिकेतन हमें और भी सदाशयता के साथ सचेतन होने तथा प्रयास करने के लिए प्रेरित करता है और समस्या के समाधान के उपायों के बारे में कम-अज़-कम कुछ मूल्यवान सोच और प्रयत्नों का पता देता है। पुराने ढर्रे पर चली आ रही पद्धतियाँ आज पूरी तरह असमर्थ हो चुकी हैं। रवीन्द्रनाथ के दीप्त जीवनदर्शन पर आधारित शिक्षा-चिंतन की प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण है।

इसके बावजूद रवीन्द्र-पूजन ही सर्वस्व नहीं है। हमें मूल से ही सोचने की ज़रूरत है। रोज़गारमूलक शिक्षा के साथ वृहत्तर शिक्षा को किस तरह मिलाया जा सकता है, यही प्राथमिक सवाल है। यहीं पर मूल द्वन्द्व है। इसका केवल एक या फिर कोई सर्वकालीन उत्तर नहीं हो सकता। स्थान और काल में द्वन्द्व और समाधान के स्वरूप बदल जाते हैं। इस देश और इस समय के लिए हम अभी भी कोई समाधान नहीं ढूँढ़ सके हैं।

नाट्य कला का अध्यापन

संदर्भ: नई शिक्षा नीति

आलोक चटर्जी

केन्द्रीय भारत सरकार ने जो नई शिक्षा नीति घोषित की है उसमें कई महत्वपूर्ण बदलावों के साथ मिडिल स्कूल कक्षाओं में रंगमंच एक विषय के रुप में शामिल किया गया है। यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण क़दम है जिसका स्वागत किया जाना चाहिए। बरसों से यह मांग रंगचिंतकों द्वारा उठाई जा रही थी कि रंगमंच के महत्व को स्वीकार कर उसे शिक्षा में शामिल किया जाना चाहिए। इसी क्रम में कुछ स्कूलों में थियेटर टीचर रखे भी जाने लगे हैं। विशेष रुप से बड़े शहरों के प्रतिष्ठित स्कूलों में। पर वहाँ भी थियेटर टीचर को कोई अन्य विषय पढ़ाना आवश्यक होता है, वो पूर्णकालिक नहीं होता। आश्चर्य का विषय है कि स्कूलों में पीटी टीचर, क्राफ़्ट टीचर, संगीत टीचर तो होते है परंतु रंगमंच का टीचर सिरे से अनुपस्थित ही है।

बच्चों के लिए रंगकर्म एक अत्यंत संवेदनशील और गंभीर मामला है। विदेशों में बच्चों के नाटकों को उचित स्थान व दर्शक मिलते हैं। बच्चों की पर्सनालिटी ग्रूमिंग में रंगमंच महती भूमिका का निर्वाह करता है। हकलाने, तुतलाने या अत्यधिक शर्मीले स्वभाव को ठीक किया जा सकता है, बशर्ते आप हम इसे एक वैज्ञानिक थैरेपी समझें।

बच्चों के लिए नाटक लिखना, आज के समसामयिक विषयों में उन्हें जोड़ना आसान या चलताऊ काम नहीं है। उसके लिए चाहिए गहरी संवेदना और समझ। बच्चों की विकास गति वयस्कों के मुक़ाबले अधिक तेज़ होती है और वह जिज्ञासा से परिपूर्ण भी है। कारण व्यावहारिक अनुभव अभी नहीं है।

ऐसे में बच्चों के साथ रंगमंच के अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में कई बातों का ध्यान रखना होगा जैसे कि विषय सरल हो, नैतिकता और चरित्र निर्माण के साथ राष्ट्र सेवा के भावों से युक्त हो। त्वरित निर्णय लेना, कुशाग्रता से अवलोकन करना यह सब शिक्षक के कार्य हैं जो वे अपने विद्यार्थियों के साथ दृढ़तापूर्वक संपन्न करेंगे। हमारे साहित्य में पंचतंत्र, हितोपदेश और कथा

सरित्सागर जैसे संग्रह उपस्थित हैं, जो और कहीं भी किसी अन्य सभ्यता में दृष्टिगोचर नहीं होते। खेल एक महत्वपूर्ण घटक है सीखने का। प्रत्येक शिक्षक को बालमन के साथ सामंजस्य बिठाते हुए कार्य करना है। अध्यापन में व्यावहारिकता को प्रमुखता देना आवश्यक है। अन्यथा अन्य कई विश्वविद्यालयों तक में मात्र सैद्धांतिकी पर ज़ोर दिया जाता है। ऐसे में विज़न तो प्राप्त होता है परंतु वह प्रदर्शनकर्ता नहीं बन पाता जो कि अभिनेता का मूल है।

शुभ समय आ गया है। बहुत से लोग थियेटर में रुकना चाहते हैं पर रुक नहीं पाते क्योंकि आर्थिक असुरक्षा सामने होती है। यदि नई नीति के अनुसार आठवीं से ग्यारहवीं तक रंगमंच के अध्ययन, अध्यापन के कार्यक्रम को उचित ढंग से लागू किया जाए, तो हज़ारों रंगकर्मियों को एक वैकल्पिक आर्थिक सुरक्षा मिलेगी और वे रंगमंच में नई ऊर्जा के साथ कार्य कर सकने में सक्षम होंगे।

बच्चों को स्थानीय संस्कृति का पूर्ण ज्ञान दिया जाए और उन्हें अपने अंचल और प्रदेश की यात्रा कराई जाए जिससे वे वयस्क होने के पूर्व ही अपने देश, प्रदेश, समाज के प्रति जवाबदेह भी महसूस करेंगे। रंगमंच सारे कला माध्यमों का प्रमुख है। अतः संगीत, वादन, नृत्य चित्रकारी, शिल्पकला, रुपसज्जा, बेसिक स्टेज और सेट डिज़ाइन के विशेषज्ञों का भी समय-समय पर विद्यार्थियों को मार्गदर्शन देना उचित होगा। रंगमंच का आधार है कविता और साहित्य शेष एवं उत्तरोत्तर विकास क्रम में विभिन्न सोपान मात्र हैं। हमारे आख्यान, रामायण, महाभारत सब काव्य हैं। इससे अपनी भाषा, उसके स्पष्ट और साफ़ उच्चारण के बाद ही विद्यार्थियों का जीवंत वैदिक संपर्क होगा। जो कहानियाँ कोर्स में हैं उन्हें क्लास में ही नाट्य रूप में प्रस्तुत करना, विजुअल लर्निंग और टीचिंग को बढ़ावा देगा क्योंकि भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में स्वयं ही कहा है कि नाटक एक दृश्य-श्रव्य माध्यम है। अतः उसे समाज में बरतने हेतु यह व्यावहारिक क़दम ही अधिक सहायता करेगा। जो रंगकर्मी मात्र बच्चों के साथ ही रंगमंच करते हों उन्हें इन कार्यक्रमों से सीधे जोड़ना होगा तथा उनके सुझाव भी उचित रूप से स्वीकारने की पहल करना भी आवश्यक होगा।

प्रेमचंद से लेकर टैगोर तक ने बच्चों के लिए अलग से कहानी, कविता और नाटक रचे हैं। मराठी में भी बहुत नाटक बच्चों पर हैं। वहाँ बाल रंगमंच बहुत अधिक विकसित हो चुका है। वहाँ से भी आलेख लेकर उन्हें अनूदित किया जा सकता है।

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह किसी बोझ या भार के समान विद्यार्थियों को ना लगे वरन खेल-खेल में ही वे अपनी झिझक, संकोच को त्यागकर अपने व्यक्तित्व को एक फ़न के समान पुष्पित-पल्लवित कर समने में समर्थ हों। उनके आत्मविश्वास को, ऊर्जा को बढ़ाकर एक सामजंस्य बिठाना होगा। यह सब कोई मामूली कार्य नहीं है, अत्यधिक दक्ष शिक्षक चाहिए। एक सुझाव है कि बच्चों के साथ रंगकर्म करने वाले रंगकर्मी का एक आधार शिविर लगाया जाए और टीचर्स ट्रेनिंग प्रोग्राम हो। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली इस ओर 'टोली' के माध्यम से महत्वपूर्ण कार्य विगत कई दशकों से कर रहा है। उन्होंने कई शिक्षक तैयार भी किए हैं, उनकी पद्धति का अनुसरण किया जाना चाहिए। बच्चों के अभिभावकों, परिजनों को नियमित दर्शक बनाने से वे दर्शक के साथ आलोचक और सुझावकर्ता की भूमिका भी निभाएँगे।

शुभ समय आ गया है। बहुत से लोग थियेटर में रुकना चाहते हैं पर रुक नहीं पाते क्योंकि आर्थिक असुरक्षा सामने होती है। यदि नई नीति के अनुसार आठवीं से ग्यारहवीं तक रंगमंच के अध्ययन, अध्यापन के कार्यक्रम को उचित ढंग से लागू किया जाए, तो हज़ारों रंगकर्मियों को एक वैकल्पिक आर्थिक सुरक्षा मिलेगी और वे रंगमंच में नई ऊर्जा के साथ कार्य कर सकने में सक्षम होंगे। बालक-बालिकाएँ बच्चे कलात्मक सौंदर्य बोध के साथ आगे बढ़ेंगे और अपने जीवन को और अधिक बेहतर बनाने के साथ-साथ वे भारत, भारतीयता और भारतीय संस्कार समाज से भी पूरी तरह परिचित होंगे। नई पीढ़ी को आगे मार्गदर्शन भी प्राप्त होगा।

अभिनेता/निर्देशक होना अलग बात है लेकिन रंगमंच का अध्ययन-अध्यापन अत्यंत कठिन और दुष्कर कार्य है उसके लिए तकनीक, शिल्प, इतिहास सब चाहिए तभी वे शिक्षक के रुप में अपने विद्यार्थियों को प्रेरित भी कर पाएँगे।

इस पहल का स्वागत है। आइए, सबसे पहले इस हेतु अध्यापक गढ़ें।

तीसरी रंगधारा के जनक

ज़ाहिद ख़ान

आधुनिक भारतीय रंगमंच को जिन शख़्सियतों ने अपने काम से सबसे ज़्यादा प्रभावित किया, उनमें बादल सरकार एक अहम नाम है। वे रंगमंच की तीसरी धारा यानी 'थर्ड थिएटर' के जनक माने जाते हैं। यह आम आदमियों का रंगमंच था, पीपुल्स थिएटर। जिसमें वे बिना किसी टिकट के बेहतरीन नाटकों का मज़ा लेते थे। बादल सरकार सिर्फ़ एक प्रतिबद्ध रंगकर्मी ही नहीं थे, बल्कि अच्छे लेखक और सुलझे हुए निर्देशक भी थे। रंगकर्म के हर क्षेत्र में उनकी महारत थी।

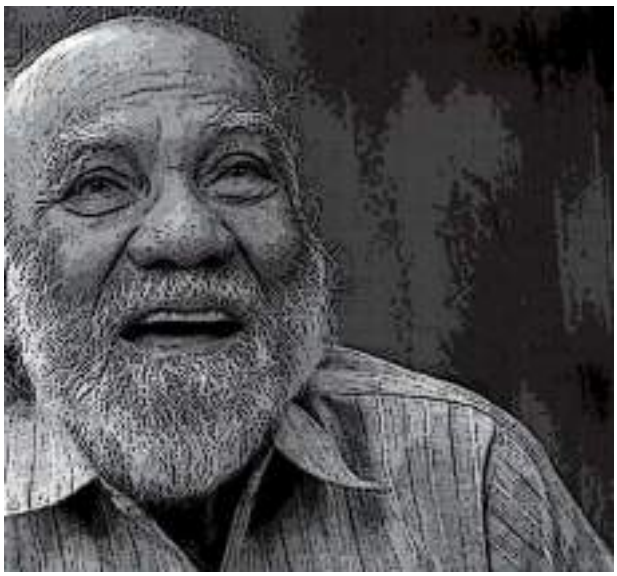

पुरोधाः बादल सरकार

बीसवीं सदी के तीन दशक यानी सातवाँ, आठवाँ और नवाँ बादल सरकार के तूफ़ानी रंगकर्म के दशक थे। इन दशकों में रंगमंच पर उनकी गहरी छाप रही। भारतीय रंगमंच को उन्होंने एक नई दिशा और नई सोच प्रदान की। भारतीय रंगमंच को वैश्विक पहचान दी। उन्होंने बतलाया कि भारतीय रंगमंच भी यूरोपीय रंगमंच से कमतर नहीं। 15 जुलाई, 1925 को कोलकाता में जन्मे बादल सरकार का असली नाम सुधींद्र सरकार था। वे पेशे से इंजीनियर थे। उन्होंने शिवपुर के बंगाल इंजीनियरिंग कॉलेज से डिप्लोमा हासिल किया। बाद में टाउन प्लानिंग का कोर्स करने के लिए लंदन चले गए। यादवपुर यूनिवर्सिटी से तुलनात्मक साहित्य में उन्होंने एमए किया। बादल सरकार नाटक की ओर बहुत बाद में आए। इससे पहले डीवीसी में उन्होंने नौकरी की। लंदन में टाउन प्लानिंग के कोर्स करने के दौरान जॉन लिटिलवुड, एंथनी सर्शियो, रिचर्ड शेख़नर, मार्गेट रोलिंस और जेरी ग्रेतोवस्की जैसी हस्तियों के रंगकर्म से मुतास्सिर होकर वे अदाकारी के मैदान में उतरे। थोड़े से ही अरसे में डायरेक्शन करने लगे। डायरेक्शन करते हुए भी उनका दिल नहीं भरा। वजह, जिस तरह की कहानियाँ वे दर्शकों को दिखाना चाहते थे, वह स्क्रिप्ट उन्हें नहीं मिल रही थी। लिहाजा ख़ुद ही लिखना शुरु कर दिया। इस तरह बादल सरकार पूर्ण रुप से रंगकर्म की तरफ़ आ गए। थिएटर ही उनकी ज़िंदगी हो गया। साल 1956 में बादल सरकार ने अपना पहला नाटक 'सॉल्यूशन एक्स' लिखा। लेकिन 'एवं इंद्रजीत' और 'पगला घोड़ा' वे नाटक हैं, जिनसे उन्हें पहचान मिली। उनके ये नाटक सभी जगह कामयाब रहे। इसके बाद उन्होंने फिर कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

बादल सरकार ने रंगमंच के आकाश में जब क़दम बढ़ाए, पश्चिम बंगाल में उत्पल दत्त और शंभु मित्र जैसे रंगकर्मियों और निर्देशकों का बोलबाला था। इसी दौर में हिंदी में मोहन राकेश, कन्नड़ में गिरीश कर्नाड और मराठी रंगमंच में विजय तेंदुलकर अपने नाटकों से हलचल मचाए हुए थे। बादल सरकार ने इन सब रंग निर्देशकों से अलग हटकर, अपनी एक जुदा पहचान बनाई। उन्होंने साल 1967 में 'शताब्दी' नाम से एक रंगटोली तैयार की और पश्चिम बंगाल के ग्रामीण इलाक़ों में अपने नाटक लेकर पहुँचे। यह कुछ-कुछ राज्य के पारंपरिक लोक नाट्य 'जात्रा' की शैली थी। पर ये नाटक लोक नाट्य नहीं थे, बल्कि आधुनिक नाटक थे। रंगमंच में पारंपरिक मंचीय प्रदर्शनों के बजाय वे अपने नाटकों को दर्शकों के बीच ले गए। उन्हीं के बीच नाटक खेले गए। यह एक नया प्रयोग था। जिसमें किरदारों की ख़ास ड्रेस, मेकअप, स्टेज पर रौशनी और साउंड सिस्टम वगैरह का बंदोबस्त नहीं करना होता था। नाटक, दर्शकों के बीच खुले मैदान, सड़क के किसी नुक्कड़ या बीच चौराहे पर खेले जाते। कई बार दर्शक भी उनमें किरदार के मानिंद हिस्सा

लेते थे। किरदारों के साथ बोलते-बतियाते। नाटक से वे पूरी तरह से जुड़ जाते। ज़ाहिर है कि यह रंगमंच दर्शकों को ख़ूब पसंद आया। रंगमंच की तीसरी धारा यानी 'थर्ड थिएटर' की यह शुरुआत थी। जिसका उन्होंने लगातार विकास किया। आगे चलकर 'थर्ड थिएटर' से ही उनकी रंगमंच में पहचान बनी। दिल्ली और मुंबई जैसे महानगरों में जब बादल सरकार अपने इस थिएटर को लेकर पहुँचे, तो वहाँ के रंग-जगत में हलचल पैदा हुई। रंग-जगत हैरान हुआ कि यह किस तरह का थिएटर है। प्रोसेनियम थिएटर से इतर यह उनके लिए अलग ही तरह का तजुर्बा था।

थर्ड थिएटर अचानक अस्तित्व में नहीं आया, इसके पीछे बादल सरकार के कई तर्जुबात हैं। उनकी ज़िंदगी के कुछ साल लंदन, नाइजीरिया और फ्राँस में गुज़रे। विदेशों में प्रवास के दौरान बादल सरकार ने रंगमंच की अलग-अलग शैलियों को न सिर्फ़ नज़दीकता से देखा, बल्कि उनका गहन अध्ययन भी किया। मिसाल के तौर पर इंग्लैंड में उस दौर के अज़ीम ड्रामा निगार विवियन ली और चार्ल्स लटन से उन्होंने मुलाक़ात की। गोलाकार एरिना मंच यानी ओपन थिएटर में मशहूर रंगमंच अदाकार मार्गेट रोलिंस को अभिनय करते देखा। पोलैंड में ड्रामा निगार ग्रोटोवस्की, जिन्होंने 'पुअर थिएटर' की परिकल्पना को दुनिया के सामने रखा, उनसे मिले। इस थिएटर के बारे में उनसे बातचीत की। तीसरे रंगमंच पर बादल सरकार का यक़ीन और भी ज़्यादा पुख़्ता हो गया, जब वे रिचर्ड शेखनर के संपर्क में आए। शेखनर के सुझाव पर वे अमेरिका गए और वहाँ उनकी कार्यशाला में हिस्सा लिया। इसके बाद बादल सरकार ने ख़ुद भी यह रास्ता इख़्तियार कर लिया। बादल सरकार ने इस शैली में सिर्फ़ रंगमंच ही नहीं किया, बल्कि थर्ड थिएटर के कंसेप्ट को लेकर उन्होंने देश के अलग-अलग हिस्सों में कई कार्यशालाएँ भी आयोजित कीं। युवा रंगकर्मियों को उन्होंने सिखलाया कि कम संसाधनों में वे कैसे अपने नाटक जनता के बीच ले जा सकते हैं। थर्ड थिएटर के बारे में बादल सरकार की सीधी-सीधी सोच थी, ''जहाँ रंगकर्मियों के पास प्रतिभा, उत्साह और लगन तो है, पर साधन नहीं हैं, वहाँ तीसरे रंगमंच की ज़रुरत है।'' यही नहीं उनका यह भी मानना था, ''थिएटर के लिए दो ही चीज़ें ज़रुरी हैं, दर्शक और अभिनेता। बाक़ी तमाम साधनों को छोड़ा जा सकता है।'' अपने इस ख़्याल पर वे आख़िर तक क़ायम रहे। यहाँ तक कि इसे एक आंदोलन बना दिया। आम आदमी को जिस तरह से बादल सरकार के थर्ड थिएटर ने जोड़ा, रंगमंच का कोई दूसरा फॉर्मेट वह नहीं कर सका। अलबत्ता बाद में ठीक इसी शैली में सफ़दर हाशमी स्ट्रीट थिएटर लेकर आए। उनके नुक्कड़ नाटकों को भी जनता में बेहद मक़बूलियत हासिल हुई।

13 मई, 2011 को 86 साल की उम्र में बादल सरकार ने जीवन के रंगमंच से अपनी विदाई ली। निधन से बहुत साल पहले ही वे अपने नेत्र और देहदान का ऐलान कर चुके थे। उनकी मर्ज़ी के मुताबिक़ उनका जिस्म अस्पताल को सौंप दिया गया। इससे पहले उनकी आँखें एक संस्था को डोनेट कर दी गईं। बादल सरकार ने भले ही इस दुनिया-ए-फ़ानी को अलविदा कह दिया लेकिन भारत की सरज़मीं पर उनके तीसरे रंगमंच की आहटें हमेशा कौंधती रहेगी।

किंवदंति

सोलह जुलाई...। साल 2016...। बरसाती सुबह थी। मौसम खुल गया था और भोपाल की श्यामला पहाड़ी के ढलुआ पठार पर बने कलाओं के घर भारत भवन में संगीत बिरादरी सिमट आयी थी। मालूम हुआ कि संतूर समारोह में शिरकत करने पंडित शिवकुमार शर्मा अपनी तमाम दीगर विदेश यात्राओं को तौबा कर पूरे तीन दिनों के लिए भोपाल आए हैं। ये उनसे संवाद की सुबह थी। मेरे लिए यह सौभाग्य का क्षण था कि संतूर वादन की सभाओं के साथ ही इस शिव-संवाद के सूत्र संचालन का ज़िम्मा भी मुझे भारत भवन की ओर से मिला। अनेक अग्रज और नई पीढ़ी के संगीतकार ख़ासकर उदीयमान संतूर वादक अपनी प्रश्नाकुलता और जिज्ञासाओं के साथ जमा थे। प्रश्नों के सामने जीवन व्यापी अनुभवों का सार समेटे उत्तरों का हिमालय था। संवाद का शिखर आहिस्ता-आहिस्ता पिघलता गया। सपनों, संघर्षों और सफलताओं की सुनी-अनसुनी कहानियाँ चहक उठीं। पंडित शिवकुमार शर्मा से हुई लगभग दो घंटे की यह वार्ता उन दरीचों को खोलती है जहाँ जीवन की रंगभूमि पर एक साधारण मनुष्य के महामानव में बदल जाने का दृश्य खुलता है। पंडितजी के प्रति आंतरिक श्रद्धा और प्रणति। प्रस्तुत है उनके संवाद के कुछ अंश।

विनय उपाध्याय

यादों का संतूर

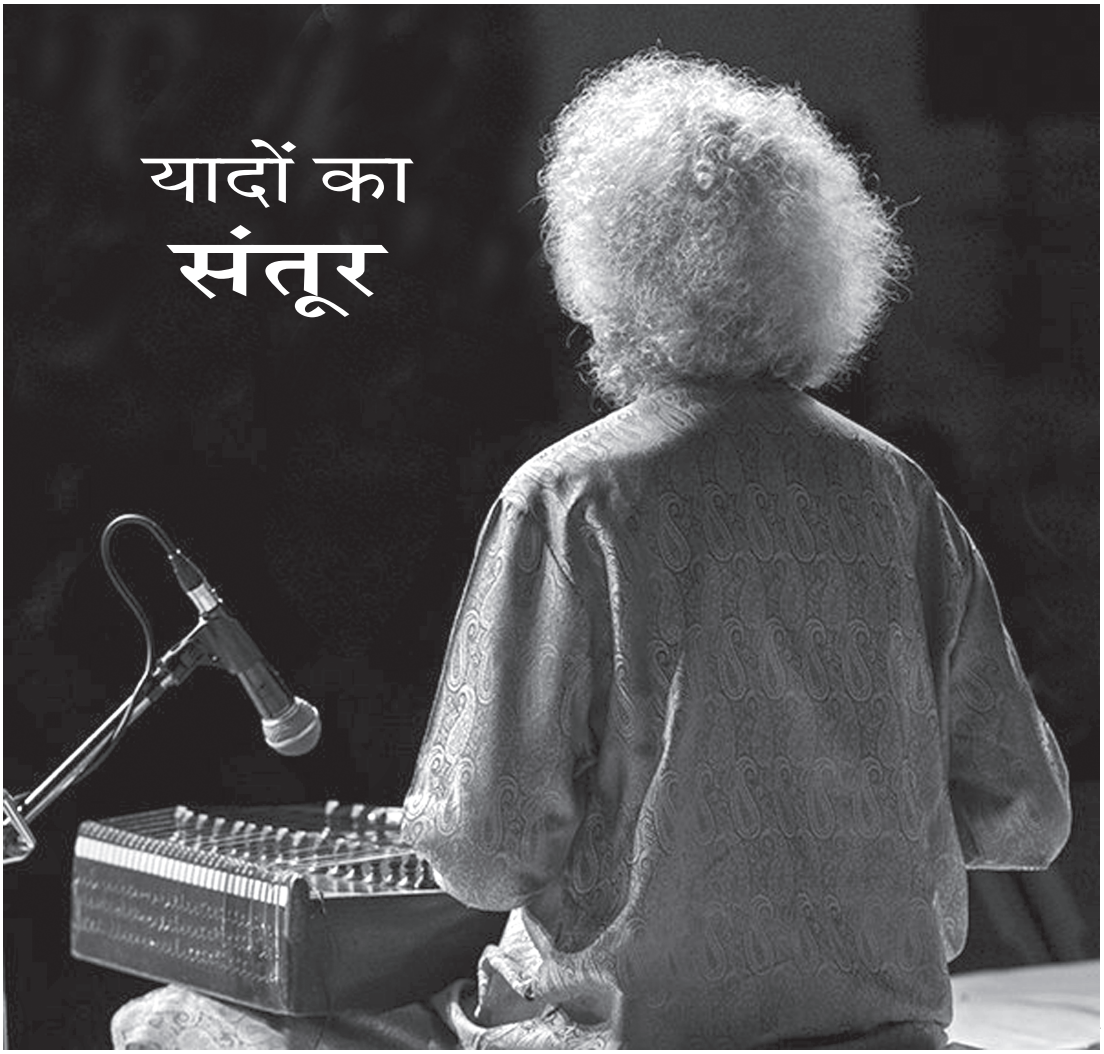

आत्ममुग्धता और प्रशंसा
प्रतिभा के दुश्मन होते हैं

संगीत ऐसा काम है कि कोई एक शख़्स या एक घराना या परिवार उसका फ़ैसला नहीं कर सकते। आपको दुनिया को साबित करना पड़ता है। जो संगीतकार हैं, पहले वो आपको मानें। आलोचक-समीक्षक आपको मानें। आम जनता आपको मानें, तब प्रमाणित होता है। मेरे कहने से नहीं होता कि ये मेरा सबसे बड़ा शिष्य है। हर शिष्य को अपने आपको साबित करना पड़ता है। जब मैं अपने शिष्यों को सिखाता हूँ, उस समय भी मैं कुछ सीखता हूँ। सिखाने की लिमिट है, सीखने की कोई लिमिट नहीं है। सीखने का कोई एक फार्मूला निश्चित नहीं किया जा सकता कि दस घंटे ही रियाज़ करेंगे तो काम बनेगा। ये मेरा तजुर्बा है। मेरे कई शिष्य दस दिन तक भी बात या सबक नहीं सीखे। कोई ऐसे भी थे कि डेढ़ घंटे में उनकी समझ में आ गया।

●●●

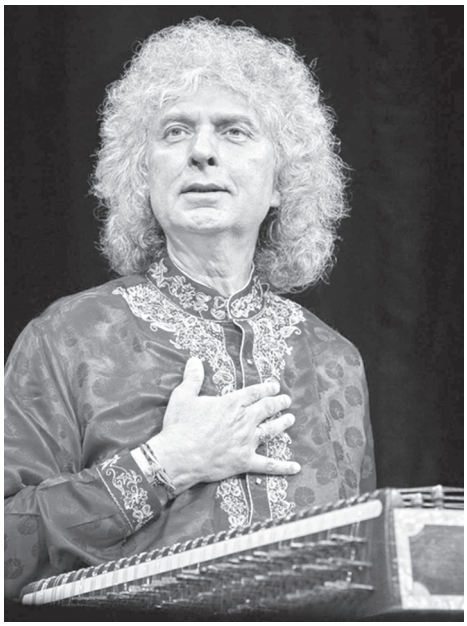

संवाद

मैं समझता हूँ कि हमारे देश के कलाकारों पर एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है कि वे पहले श्रोताओं को शिक्षित करें संगीत सुनने के बारे में। श्रोताओं को जैसा हम बनायेंगे वैसे वो बन जायेंगे। जैसे आपने कहा कि अगर आप श्रोताओं का सिर्फ़ मनोरंजन करना चाहते हैं तो फिर उसी तरीक़े से वो संगीत को सुनेंगे। आप संगीत की रूह को पहले ख़ुद महसूस करें।

देखने की बात यह है कि आपको किस तरीक़े की तालीम मिली है, किस तरीक़े की गाइडेन्स मिली है, फिर आपका अपना सोच-विचार क्या है? यह तो ज़ाहिर है कि जो आप महसूस कर रहे हैं अक्सर वही आप बजाते हैं। अगर आप अपने संगीत को मनोरंजन के तरीक़े से देखते हैं तो आप उसी तरीक़े से उसको पेश करेंगे। लेकिन एक शब्द मैं इस्तेमाल कर रहा 'म्यूज़िक बियॉण्ड इन्टरटेनमेन्ट'। मैं श्रोताओं से बातचीत करके उनको सुनाता हूँ। चाहे वो कॉलेज के स्टूडेंट्स हों, चाहे वो विदेश के लोग हों। मक़सद यह है कि हमको पहले ख़ुद संतुष्ट होना चाहिए। कई मर्तबा मैं देखता हूँ कि कई कलाकारों के मन में डर है, कि अगर हम प्रभावित करने वाली चीज़ें गायेंगे-बजायेंगे नहीं तो शायद हमारा गाना-बजाना जमेगा नहीं। इसके लिए कुछ साहस, धैर्य और अपनी निष्ठा होनी चाहिए।

अगर आप ही को संतोष नहीं है, तो फिर यह काम नहीं हो सकता। आजकल देख रहा हूँ कि कई जगह आलाप को लोग इतनी तरजीह नहीं देते। इण्स्ट्रूमेण्टल म्यूज़िक की बात कर रहा हूँ। बहुत छोटा आलाप बजाकर शुरु कर दिया क्योंकि शायद लोग बोर हो जायेंगे। अगर अपने मन में ही ये विचार धारण कर लिया कि आलाप लम्बा बजायेंगे तो लोग बोर हो जायेंगे, तो फिर आप उसको बजा ही नहीं सकेंगे। पहले तो ख़ुद को सहमत करना कि आप क्या करना चाहते हैं। मैं समझता हूँ कि सबसे पहले इसका मार्गदर्शन गुरु से मिलता है। गुरु आपको किस तरीक़े से तालीम दे रहे हैं, कि बेटा ये संगीत क्या चीज़ है? गुरु की धारणा क्या है, वही तो आगे चलेगा।

हम सब कलाकारों का ये फ़र्ज़ बनता है कि हम जो भी करें, पहले उसको सोचें कि हम क्या मैसेज दे रहे हैं और उसका नतीजा क्या होगा! कोई शॉर्टकट पॉपुलरटी में ढूँढ़ने की कोशिश अगर आप करेंगे तो वो शॉर्ट-लिव्ड भी हो सकता है। जिसमें थोड़ा धैर्य होगा, वो कर पायेगा। कई दफ़ा मुझे लोग पूछते हैं कि आप अगर पूना में बजा रहे हैं तो आप क्या बजाते हैं और अगर

छाया: हिंदुस्तान टाइम्स

दया का पात्र बनने लगे तो कलाकार को मंच छोड़ देना चाहिए

जैसे कोई सामान्य आदमी गृहस्थ आश्रम में होता है, वही एक संगीतकार की भी स्थिति होती है। एक बड़ी तैयारी की तरफ़ पूरे यौवन भर गाना-बजाना है और उसकी एक भूख भी होती है कि ताली बजे, लोग प्रशंसा करें और फिर वो जो वानप्रस्थ आश्रम आता है, उसमें तालियों की भूख निकल जाती है। फिर अपने आपको ख़ुद शख़्स देखता है। मुझे भी इन दिनों महसूस हो रहा है कि मेरे बजाने में क्या बदलाव आया है। ये भगवान की कृपा है। आपसे बिल्कुल ऑनेस्ट बात कर रहा हूँ। कुछ तानें हैं जो आज से दस-पन्द्रह साल पहले मेरे हाथ से निकलती थीं, अब नहीं निकलती हैं। अभी मैं बेटे राहुल के हाथ से वो तानें सुनता हूँ। ये ईश्वर और गुरु की कृपा है। कलाकार को श्रोता बहुत प्यार करते हैं, लेकिन वो उस प्यार की वजह से कुण्ठित भी होते हैं जब सुनकर जाते हैं- यार, वो बात अभी नहीं हो रही है, ऐसी स्थिति में कलाकार को स्टेज पर नहीं बजाना चाहिए। जब दया का पात्र बनने लगे, उसके पहले मंच छोड़ देना चाहिए।

आप पेंसिलवेनिया में बजा रहे हैं तो क्या बजाते हैं? यह आप पर निर्भर करता है। श्रोता किस क़िस्म के बैठे हुए हैं, वैसा ही देखकर, अनुमान लगाकर कुछ कलाकार संगीत शुरु कर देते हैं।

मैं ज़रा इस विचार से अलग हूँ। मैंने अपनी इस पूरी यात्रा में चिंतन किया कि जो मैं कन्विंस्ड हूँ कि हमारा संगीत दरअसल ये है और मैं समझता हूँ कि यह आपको अन्तर्मुखी कर सकता है। मैंने पूरी दुनिया में यह कोशिश नहीं की कि आज यहाँ बजा रहा हूँ तो श्रोता क्या चाहते हैं वो कर दूँ और कल वहाँ बजा रहा हूँ तो वहाँ सीरियस सुनने वाले हैं इसलिए अपना संगीत बदल दूँ।

● ● ●

फ़िल्मों में हमारे गाने बहुत हिट हो गये। स्टेज पर चिट्ठियाँ आ जाती थीं- 'देखा एक ख़्वाब तो ये सिलसिले हुए' बजाइये। मैंने कहा, भैया ये सुनना है तो विविध भारती में फ़रमाइश भेजो। बोले- नहीं, ये तो आप ही की कम्पोज़िशन है। मैंने कहा, वो फ़िल्म के लिए की गई है स्टेज पर बजाने के लिए नहीं। अगर मैं श्रोताओं के इस आग्रह में बह जाता तो यह हमेशा की रवायत या सिलसिला बन जाता। फिर मेरा संगीत का आध्यात्मिक मिशन ख़त्म हो जाता। लेकिन फ़ैसला मुझे करना है। हमने वही किया। लोगों ने फ़रमाइश करना बन्द कर दी।

तो कलाकार के ऊपर बहुत बड़ी रिस्पॉन्सिबिलिटी है और ये हमको समझना है। लेकिन इसमें कोई ऐसा रूल नहीं बनाया जा सकता, ऐसा कोई क़ायदा-क़ानून नहीं बनाया जा सकता है कि ऐसा ही आप करिये। ऐसा तो कोई है नहीं। सबकी अपनी-अपनी इच्छा है, जिसका जो सोच है वो वही करेंगे और उनको आज़ादी है करने की।

● ● ●

मुझे अभी मालूम है कि मेरे बजाने में क्या-क्या कमज़ोरियाँ आ रही हैं। शायद श्रोताओं को नहीं पता चलता, मुझे आभास है इसका। ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम संगीत में होता है। मैं इसको महसूस कर रहा हूँ। जैसे कोई सामान्य आदमी गृहस्थ आश्रम में होता है, वही एक संगीतकार की भी स्थिति होती है। एक बड़ी तैयारी की तरफ़ पूरे यौवन भर गाना-बजाना है और उसकी एक भूख भी होती है कि ताली बजे, लोग प्रशंसा करें और फिर वो जो वानप्रस्थ आश्रम आता है, उसमें तालियों की भूख निकल जाती है और फिर अपने आपको ख़ुद शख़्स देखता है। मुझे भी इन दिनों महसूस हो रहा है कि मेरे बजाने में क्या बदलाव

आया है। ये भगवान की कृपा है। आपसे बिल्कुल ऑनेस्ट बात कर रहा हूँ। कुछ तानें हैं जो आज से दस-पन्द्रह साल मेरे हाथ से निकलती थीं, अब नहीं निकलती हैं। अभी मैं बेटे राहुल के हाथ से वो तानें सुनता हूँ। ये ईश्वर और गुरु की कृपा है। कलाकार को श्रोता बहुत प्यार करते हैं, लेकिन वो उस प्यार की वजह से कुण्ठित भी होते हैं जब सुनकर जाते हैं- यार, वो बात अभी नहीं हो रही है, ऐसी स्थिति में कलाकार को स्टेज पर नहीं बजाना चाहिए। जब दया का पात्र बनने लगे, उसके पहले मंच छोड़ देना चाहिए। कई दफ़े कई तरह की मजबूरी होती है। किसी के फाइनेंशियल कॉन्ट्रेक्ट होते हैं, कलाकारों को करना पड़ता है। लेकिन मैं यह समझता हूँ कि जिनके पास वो प्रॉब्लम्स नहीं हैं, उन्हें सोचना चाहिए। कुछेक कलाकार हुए हैं जिनमें श्रीमती केसरबाई जी थीं। उन्होंने फ़ैसला कर लिया था कि अब मैं पब्लिक में नहीं गाऊँगी, मुझे ऑडियन्स का तरस नहीं चाहिए कि- अरे! ये ऐसा करती थीं, अब नहीं हो रहा। ऐसे बहुत कम कलाकार होते हैं। और उनके अपने-अपने रीज़न्स होते होंगे, लेकिन मैं इसमें पूरी तरह से विश्वास करता हूँ कि संयम चुक जाए तो कलाकार को सार्वजनिक मंचों से विदा ले लेना चाहिए।

गाना-बजाना सिर्फ़ रियाज़ की बात नहीं है, ये कोई कुश्ती का काम नहीं है। ये बहुत ही सूक्ष्म काम है। मैं पूरी तरह से अनुभव की बात कर रहा हूँ। कई मर्तबा मेरे साथ ऐसा हुआ है कि मेरी सेहत ठीक नहीं है। लग रहा है कि स्टेज पर जाकर मेरा हाथ भी नहीं चलेगा, लेकिन कुछ दैवीय शक्ति है जो मुझे सहायता करती है। स्टेज पर आकर जब मैं बैठता हूँ, मुझे ख़ुद विश्वास नहीं होता कि बीस मिनट पहले जो मेरी कण्डीशन थी वो कहाँ चली गयी, मैं कैसे बजा पा रहा हूँ और मज़े की बात यह है कि जब कार्यक्रम समाप्त होता है, मैं फिर उसी स्थिति में चला जाता हूँ, साज़ उठाने की भी शक्ति नहीं है। ये क्या चीज़ है? ये साधना है।

एक तरीक़ा होता है स्टेज पर जाने का कि आज दिखा देंगे। वह भी बहुत अच्छा है। सेल्फ़ कॉन्फ़िडेन्स के बग़ैर तो आदमी परफ़ॉर्म ही नहीं कर सकता, लेकिन सेल्फ़ कॉन्फ़िडेन्स की लक्ष्मण रेखा हमको मालूम होना चाहिए। कब सेल्फ़ कॉन्फ़िडेन्स ऐरोगन्स में तब्दील हो जाता है, वो कलाकार को मालूम होना चाहिए।

तबला, गाइड, पंचम और मैं

तबला भी मेरे संगीत जीवन का एक अहम हिस्सा है। अब तो छूट गया। लोग मेरे पीछे पड़ जाते थे। एक ज़माने में पंचम (आर.डी. बर्मन) मेरे पीछे पड़ गये। उनके साथ भी बहुत काम किया। 'गाइड' फ़िल्म जब आयी थी, मैं तबला छोड़ चुका था। 'मोसे छल किये जाए' जो गाना दिखाया गया, डायरेक्टर मेरे पीछे पड़ गये- नहीं साहब आपको तबला बजाना होगा। इधर पंचम तबला सीखे हुए थे और अली अकबर ख़ाँ साहब के पास सरोद भी सीखे हुए थे। पंचम हमारे बड़े अच्छे दोस्त थे। जब्बार पटेल मेरे पीछे पड़ गये- नहीं-नहीं, ये बड़ा इन्ट्रस्टिंग रहेगा, राहुल के साथ। मैंने कहा, भैया ऐसी लय रखो जिसमें मैं ठेका दे सकूँ। तो बजा दिया थोड़ा सा। मेरी एक उँगली का नाख़ून बढ़ा हुआ है। उसका कारण भी है कि संतूर ट्यून करने के लिए मैंने यह नाख़ून बढ़ाया हुआ है। तबले में इस उँगली को इस्तेमाल ही नहीं कर सकता। इसे बचाते हुए बजाया कई बार ढग्गा।

किसी ज़माने में मैंने तबला बजाया और शायद जम्मू-कश्मीर में मैं ही अकेला तबला बजाता था इसलिए मुझे रख लेते थे। ऐसा कोई बड़ा तबला वादक मैं नहीं था। यह भी हो जाता है कि जब कोई आदमी किसी चीज़ को छोड़ देता है तो उसकी बहुत तारीफ़ होती है- अरे! आप बहुत कमाल बजाते थे। अगर मैं बजाता रहता तो शायद कहते- अरे ठीक-ठीक है।

जो हमारी वाद्यों की क्लासिफिकेशन हैं- ताल वाद्य, सुषिर वाद्य, घनवाद्य... जितने भी हैं, संतूर किसी भी कैटेगरी में नहीं आता। जो तन्तु वाद्य है, तत-वितत वाद्य जो हैं, या तो स्ट्रोक्स से बजते हैं, उँगली का इस्तेमाल होता है या गज से बजते हैं। इसमें हाथ टच ही नहीं कर रहा है, कलम है। तो यह किसी कैटेगरी में नहीं आता। बहुत प्राचीन वाद्य है।

ये सिक्सटीज़ की बात है। पं. रविशंकर जी का किण्डर स्कूल था बॉम्बे में। वहाँ पर डॉ. बृहस्पति जी को उद्‌बोधन के लिए बुलाया और विषय था ''द ओरिज़न ऑफ स्ट्रिंग इन्स्टुमेंट्स इन इंडिया''। उन्होंने बताया कि पिनाकी वीणा पहला वाद्य बना और उसका बनाने का आइडिया आया धनुष और तीर से। जब तीर छोड़ा जाता था तो एक टँकार होती थी। तो किसी ने एक वाद्य बनाया जिसका नाम पिनाकी वीणा रखा। 'पिनाक' संस्कृत भाषा में धनुष को बोलते हैं। वो ही वाद्य विदेश में 'हॉर्प' के नाम से जाना गया और आजकल उसका मिनिएचर फ़ार्म है स्वरमण्डल। फिर उन्होंने बताया कि उसके बाद एक और वाद्य बना 'शततंत्री वीणा'। 'वीणा' शब्द हर तन्तु वाद्य के साथ आता था और उसमें उन्होंने इसका ज़िक्र किया और कहा कि यह ख़ुशी की बात है कि आज उस वाद्य का फिर से प्रचार हुआ है और उसके वादक यहाँ बैठे हुए हैं। मेरा ज़िक्र उन्होंने किया।

छाया: हिंदुस्तान टाइम्स

●●●

मेरा मानना है कि संगीत कोई भी सीख सकता है। अगर गुरु को तालीम देना आता हो और गुरु तालीम देना चाहें। सबसे पहले तो गुरु, उस्ताद जो है, उसमें यह ख़ौफ़ नहीं होना चाहिए कि अगर मैं शिष्य को यह गुर दे दूँगा तो मेरे पास क्या रहेगा? लेकिन वह बहुत सारे शागिर्दों को तैयार कर सकता है और जो उनके पास सिखाने की एक टेक्निक है वो आपको तालीमयाफ़्ता बना सकते हैं, लेकिन एक होता है एवरेज म्यूज़िशियन, एक होता है बिलो एवरेज म्यूज़िशियन, एक होता है एबव एवरेज म्यूज़िशियन, एक होता है एक्स्ट्रा ऑर्डेनरी म्यूज़िशियन और एक होता है पाथ ब्रेकिंग एक्स्ट्रा ऑर्डेनरी जीनियस। डिफरेन्ट-डिफरेन्ट कैटेगरीज़ हैं म्यूज़िशियन्स की। जो लास्ट वर्ड मैंने कहा- एक्स्ट्रा ऑर्डेनरी पाथ ब्रेकिंग विज़नरी गिफ्टेड म्यूज़िशियन, वो सैकड़ों नहीं हो सकते। हो सकता है मेरी ये सोच ग़लत भी हो, लेकिन हम देखते यही आये हैं। उदाहरण के लिए गुन्देचा बन्धु हैं। ध्रुपद को इन्होंने रिवाइव किया। मैं यह पूछना चाहता हूँ देश में कितने और गुन्देचा बन्धु हैं? पैंतीस सालों में दो-तीन गुन्देचा बन्धु क्यों नहीं आये? मेरा प्रश्न ये है। सब चीज़ों का कॉम्बीनेशन जहाँ आ जाता है वो गुन्देचा बन्धु बनते हैं। बाक़ी गुन्देचा बन्धु में ये क्षमता है, वो सिखा सकते हैं। अपनी फ़िल्म में मैंने एक चीज़ कही है कि शिष्य में क्या कुव्वत है! कैफ़ियत यह है कि शागिर्द का हौसला कितना है, उसमें कितनी कुव्वत है, कितना ले सकता है वो!

कितने कुमार गन्धर्व आये इसी मध्यप्रदेश में? कितने उस्ताद अमीर ख़ाँ साहब आये? अमीर ख़ाँ साहब ने सबसे ज़्यादा प्रभावित किया गायकों को, इंस्ट्रूमेण्टलिस्ट्स को, जिनको उन्होंने सिखाया नहीं। लेकिन उनके बाद कितने उस्ताद अमीर ख़ाँ साहब बने होंगे? बहुत अच्छा लोग गाना-

सन् 1950 में बड़े-बड़े कलाकारों ने कह दिया था कि बेटा तुम्हारे पास संगीत की बहुत अच्छी तालीम है। पर तुमने ग़लत साज़ चुन लिया है, अभी भी वक्त है। सितार या सरोद बजाना शुरु कर दो, बहुत जल्द तुम्हारा नाम हो जायेगा। यह स्थिति थी संतूर की। अब वही साज़ आज अहम जगह बना ले तो ये शिवकुमार शर्मा के रियाज़ से नहीं है, दैवीय शक्ति की कृपा से हुआ है। इसको कौन बदल सकता है? उसके नाम से आज संतूर सोप बन गया, उसके नाम से रेस्टॉरेन्ट खुल गये हैं। ये किसी शख़्स के रियाज़, मेहनत या पब्लिसिटी या बातचीत से नहीं होता है। गुरु कृपा से ही संभव है।

बजाना कर रहे हैं और उनकी चीज़ों को लेकर बहुत अच्छा सजाकर गा-बजा रहे हैं। लेकिन क्या आप यह कह सकते हैं कि दूसरे अमीर ख़ाँ साहब हैं? ये क्यों है? एक बहुत बड़ा प्रश्न है जिसमें रिसर्च की ज़रूरत है। जिस दिन मेरे दिमाग़ में ये आ जायेगा- अरे भई! ये तो मैं कर रहा हूँ मेरा रिवर्स गियर हो जायेगा।

●●●

तैयारी के बग़ैर गाना-बजाना नहीं हो सकता। जिस उस्ताद-गुरु के पास हम सीख रहे हैं, हम उनकी ही आवाज़ बनाकर गाने की कोशिश करते हैं। देखने की बात ये है कि भगवान ने हर शख़्स को डिफरेन्ट वोकल कॉर्ड डिफरेन्ट दिया हुआ है। बाप, बेटे की आवाज़ में भी फ़र्क़ है, थोड़ी सिमिलरटी हो सकती है। ग़लती यहाँ पर होती है कि वो कोशिश करते हैं उस्ताद की आवाज़ की नक़ल करने की। जहाँ पर आप नक़ल करके रियाज़ करना शुरु करेंगे, पचास प्रतिशत आपका माइनस हो गया। कोशिश यह करनी चाहिए कि अपनी नैचुरल वॉइस में गाएँ और तालीम वो जो मिल रही है उसको गाएँ।

जो इंस्ट्रुमेंट बजा रहे हो, पहले उस इंस्ट्रुमेंट की टेक्निक क्या है, उसको सही समझो। रियाज़, तैयारी ज़रूरी है। इमोशन तो बहुत बाद की चीज़ है, टेक्निक क्या है, दो कलम का इस्तेमाल कैसे होता है। मेरे तीन-चार क़िस्म के शागिर्द हैं। कुछ शागिर्द हैं जो डायरेक्ट मेरे पास सीखे हैं, उनमें भी दो भाग हैं। वो हैं जो मेरा म्यूज़िक टेक्निक समझे हैं और उसको बजा सकते हैं। दूसरे वो हैं जिन्होंने बहुत रियाज़ किया है, टेक्निक नहीं समझे हैं और मेरा म्यूज़िक नहीं बजा रहे हैं। ये मेरे ही शिष्यों में दो कैटेगरीज़ हैं।

मैं कहीं एयरपोर्ट पर जा रहा हूँ, कोई आता है मेरे पाँव छूता है- 'गुरुजी, प्रणाम!' मैंने कहा- भैया, तुमको तो कभी देखा नहीं, तुम गुरुजी बोल रहे हो। बोले- 'मैं अपने पिताजी के पास या अपने गुरुजी के पास सीखता हूँ, लेकिन मैं आपको सुनता हूँ, आपको गुरु मानता हूँ। ये दूसरी कैटेगरी है। मेरे पास सीखे नहीं हैं, लेकिन मानते हैं कि इन्होंने संतूर को लाया, हम इनको फॉलो कर रहे हैं।

एक तीसरी कैटेगरी है, जो मेरे पास सीखना चाहते थे, लेकिन किसी कारणवश सीख नहीं पाये। कुछ ऐसे हैं जो मेरे पास सीखे हुए हैं और बाद में कहीं और चले गए, बहुत अच्छी बात है, लेकिन मेरा नाम लेना छोड़ दिया। तो ये सब लोग जो बजा रहे हैं, मेरी सबको शुभकामनाएँ हैं। संतूर तो बजा रहे हैं।

मैं अभी भी अलंकार का रियाज़ करता हूँ। कोई राग का रियाज़ करने के पहले उस राग के अलंकार को साधता हूँ कि हाथ में रवानगी आये, फिर आगे शुरू करता हूँ। अलग-अलग प्रकार की टेक्निक है, उसमें तानों के छन्द हैं। कहाँ लेफ़्ट यूज़ होगा, कहाँ राइट यूज़ होगा, जब तक ये नहीं मालूम होगा, तैयारी सही नहीं होगी और इमोशन को तो भूल ही जाओ। वाद्य की टेक्निक जब तक आपकी सही नहीं है, आगे बढ़ने से कोई मतलब नहीं। बहुत ज़्यादा राग, बहुत ज़्यादा ताल बजाने से कोई फ़ायदा नहीं, तीन-चार राग बजाओ।

नई टेक्नोलॉजी को कोसे बग़ैर अपना काम करते चलें

हर चीज़ के दो पहलू होते हैं। तकनीक के साथ भी यही है। बड़े-बड़े लोगों का संगीत, पुराने उस्तादों का संगीत, यू-ट्यूब पर आपको सुनने को मिलता है और यह एक सुविधा है। मैं यह भी सुन रहा हूँ कि स्काइप से लोग सिखा भी रहे हैं। तो एक सुविधा है। मैं समझता हूँ किसी भी टेक्निक की जो पॉज़िटिव चीज़ें हैं वो स्वीकार की जानी चाहिए। उसका इस्तेमाल करना चाहिए। मैं कभी भी इनोवेशन और न्यू टेक्नोलॉजी के अंगेस्ट नहीं रहा, लेकिन उसमें हमको क्या लेना है, क्या छोड़ना है? अभी इसमें कोई आदमी ये समझ ले कि यू-ट्यूब पर सुन करके मैं गाना सीख लूँगा तो ग़लत है। उसके लिए गुरु के आश्रम में जाना पड़ेगा। ये फ़र्क़ मालूम होना चाहिए। एक नुक़सान यह हुआ है कि सीडीज़ बनना बन्द हो गईं। अभी सब ऑनलाइन हो गया है। ये बड़ा नुक़सान संगीत का हुआ है। पहले किसी ज़माने में कैसेट बनते थे, हम लोग कैसेट रिकॉर्ड करते थे। फिर वो एलपीज़ आये, फिर लाँग प्लेइंग आये, उसके बाद सीडी आया। अब सीडी भी ग़ायब हो गया। एक बहुत बड़ा आइकॉनिक स्टोर था बाम्बे में रिदम हाउस वो बन्द हो गया। सीडी बनना बन्द हो गया। क्यों हुआ है? टेक्नालॉजी की वजह से ऑनलाइन हो गया है म्यूज़िक। संगीत का नुकसान कहीं हो तो रहा है। यू-ट्यूब पर हर चीज़ है। कोई भी अपना संगीत डाल दे। इसको डेढ़ लाख लोगों ने देखा है। चाहे शायद डेढ़ सौ आदमी ने देखा होगा, अब कौन चेक करने जायेगा? ये सब चीज़ें भी हो रही हैं। ये तो होता रहेगा, इसको हम रोक नहीं सकते, न इसके लिए हमको रोना-धोना करना चाहिए, अपना काम करते चले जाना चाहिए, अपना मैसेज देते चले जाना चाहिए। जिसको लेना है ले लो जिसको नहीं लेना है तो शुक्रिया।

जब तक टेक्निक सही नहीं होगी आगे मत बढ़ो। कौन बतायेगा कि टेक्निक सही है या ग़लत है? जिसको ख़ुद टेक्निक मालूम है। टेक्निक रेकॉर्डिंग सुनकर नहीं आ सकती। लेफ़्ट से कितना स्ट्रोक्स बजेगा- 'ग म प नि स', इसमें 'ग म' कहाँ पर आयेगा, 'प' कहाँ पर आयेगा, कहाँ लेफ़्ट आयेगा, कहाँ राइट आयेगा, जब तक ये मालूम नहीं होगा हाथ अटकता रहेगा, तान में रवानगी नहीं आयेगी, हर क़िस्म की तान नहीं बजेगी। तो टेक्निक को पहले साधो। इमोशन तो बहुत दूर की बात है। तैयारी बहुत दूर की बात है। अगर ग़लत टेक्निक से तैयारी कर लोगे, वो संगीत नहीं रहेगा, वो सुर नहीं रहेगा, वो असुर हो जायेगा। टेक्निक को सीखो। उसमें दो-चार साल लगाओ, अलंकार का रियाज़ करो।

●●●

पंडित भीमसेन जी और हम लोग कार्यक्रमों की वजह से बहुत इकट्ठे ट्रेवल किये हैं फ़्लाइट में। पहले मेरा प्रोग्राम हो रहा है, बाद में उनका हो रहा है। वह अक्सर मुझसे कहते थे कि मुझे तो आठ-दस राग आते हैं। मैंने कहा, 'नहीं पण्डित जी, आपको राग सारे आते हैं। लेकिन आपने आठ-दस रागों को वश में कर लिया है।' कितने राग आपको आते हैं वो इतना लाज़मी नहीं हैं, कितने रागों में आप असर पैदा कर सकते हो! मैंने भी बहुत सारे ताल बजाये- पन्द्रह मात्रा, ग्यारह मात्रा, नौ मात्रा, तेरह मात्रा। मैंने जानबूझकर आधे के नहीं बजाये।

ज़ाकिर अपने में नैचुरल है। जिरॉक्स नहीं है अपने वालिद साहब का। ज़ाकिर ने तबले को विस्तार दिया। कई चीज़ें और एड कर दीं। उस्ताद अल्लारखा ख़ाँ साहब के पास कितने लोग सीखे, लेकिन ज़ाकिर नहीं बन सके।

संतूर बज रहा है...

•••

संतूर बज रहा है
और अपनी ही गोद में थक कर
सो रहा है समय
घुल रहा हवा में एक-एक सुर
जैसे बूँद-बूँद रिस रहा पानी
जड़ में, किसी पेड़ की
जैसे उड़ न रहा
बह रहा हो हवा में पक्षी इक
समेटते हुए अपने पंख
संतूर बज रहा है
और धमनियों में
बहुत दिनों बाद बह रही हैं साँसें
अरसे बाद जागा है प्रेम
और लिखे हैं ख़ुद को ही ख़त
जिनमें हवाला है
पहाड़ों की एक सर्द रात का।

- सुदीप सोहनी

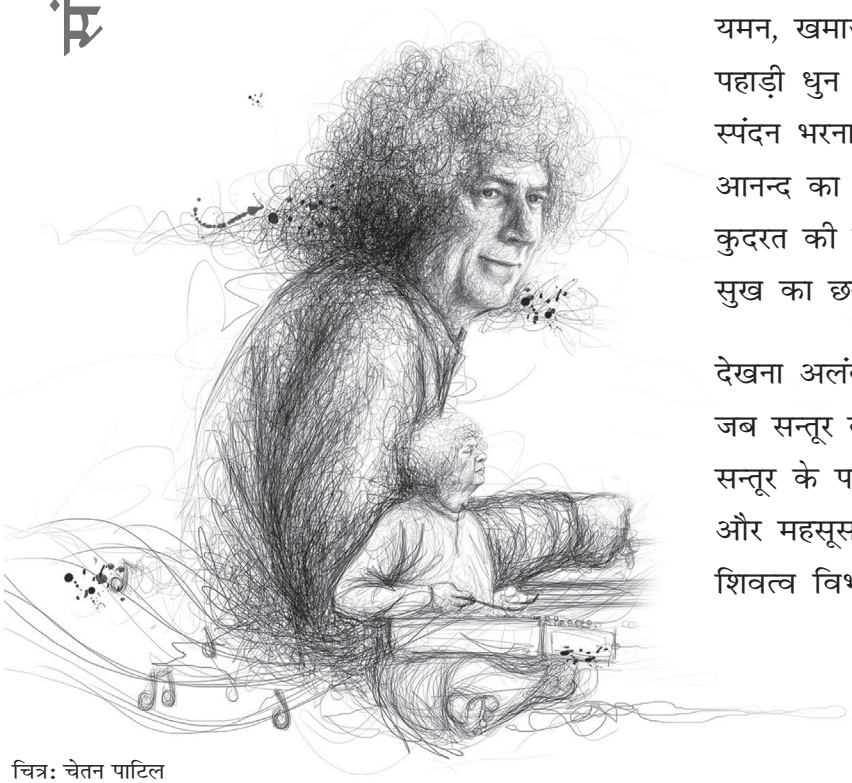

चित्र: चेतन पाटिल

•••

उजाले का झरना
बह चला सन्तूर से
सुर में सुरभित बयार
राग-सुगन्धित पहाड़
निसर्ग का आँगन
भावलीन
सुर-उन्नति दसदिक्
ध्यानमग्न सन्तूर बजाते
पण्डित शिवकुमार शर्मा

महादेव की मुस्कान गाता सन्तूर
सन्तूर गाता झरना, झील, पानी का संगीत
समुद्र की थपकी अपने तट की,
पत्तियों पर बूँद-बूँद पावस गाता है जैसे
तार पर गाता है सन्तूर
राग-फूल का सूफ़ियाना मिज़ाज
कायनात में भरता शान्ति सद्भाव
धरती को सुख देती दौड़ती चाँदनी पुरख़ुश
यमन, खमाज, हंसध्वनि, झिंझोटी, अहीरभैरव,
पहाड़ी धुन सुनना
स्पंदन भरना है
आनन्द का भीतर अपने
कुदरत की घाटी में बिखेरता
सुख का छन्द शत्तंत्री

देखना अलंकृत होना है
जब सन्तूर बजा रहे हैं
सन्तूर के पर्याय पण्डित शिवकुमार शर्मा
और महसूस करना है
शिवत्व विभूषित अनुभूति।

- प्रेमशंकर शुक्ल

मुझे लगता है कि जैसे एक आदमी चल रहा है, ऐसे चल रहा है– एक–दो–तीन–चार, ये चाल होती है न? एक चल रहा है– एक–दो, एक–दो–तीन, एक–दो तो लंगड़ाने लगता है। दूसरा जब हम सात मात्रा बजा रहे हैं तो साढ़े तीन तो होता ही है उसमें, नौ बजा रहे हैं तो साढ़े चार तो होता ही है उसमें। कई लोग इसमें पड़ जाते हैं कि साढ़े चार मात्रा, पौने आठ मात्रा बजाऊँगा। मैंने कहा, भैया ज़रूर बजाओ, लेकिन पहले तीन ताल तो बजा लो। मुश्किल ताल बजाने से लयदारी नहीं साबित होती। एक गिनतकारी होती है। लयदार आदमी अलग होता है, गिनतकार अलग होता है। इसका फ़र्क़ मालूम होना चाहिए।

●●●

जहाँ तक मेरे मन का ताल्लुक़ है, मैं कहीं पर भी होता हूँ तो मेरे अन्दर संगीत चल रहा होता है। मैं फ़्लाइट में भी हूँ तो दो काम मेरे चल रहे होते हैं। समझ लीजिए मैं बॉम्बे से लन्दन जा रहा हूँ। मैं फ़्लाइट में फ़िल्म नहीं देखता। एक तो मुझे वो करना नहीं आता कि कहाँ कैसे जाना है, क्या करना है। मुख्य कारण वो है। कभी पढ़ भी लेता हूँ। या तो मैं मेडिटेड करता हूँ या मैं अपने मन में गाता हूँ, कुछ सोचता हूँ।

एक मेंटल रियाज़ होता है, एक फ़िज़ीकल रियाज़ होता है। जब आप मेंटल रियाज़ करते हैं, कुछ आइडियाज़ आते हैं तो कुछ चीज़ों को आप सोचते हैं। फिर आप साज़ लेकर बैठते हैं तो प्रेक्टिकली उसकी कोशिश करते हैं। संगीत मेरे अन्दर चल रहा होता है। दूसरी मैं ये चीज़ करता हूँ, जैसे मैं अभी आपसे बात कर रहा हूँ। मैं इसका रियाज़ करता हूँ कि ये जो शरीर बैठा हुआ है, ये मैं नहीं हूँ और इस शरीर के हाथ में माइक है और मेरे सामने ये शख़्स बैठे हुए हैं। ये शरीर आपको जबाव दे रहा है। मैं एक दृष्टा बनकर उसको देख रहा हूँ। इसका रियाज़ करता हूँ। कहीं मैं फ्लाइट में जा रहा हूँ या एयरपोर्ट पर, एक तो मेरा वाद्य ऐसा है कि मेरे साथ नहीं होता और न तो ऐसा विचार! ये बड़ा अनूठा विचार अब तक मेरे ज़ेहन में न आया और शायद ही समझ आए! और उसका मतलब क्या है समझ में नहीं आया।

●●●

ख़ुशकिस्मती से संतूर दुर्लभ वाद्य की उस कैटेगरी में अब नहीं रहा है। जैसा मैंने ज़िक्र किया कि संतूर के नाम से 'संतूर सोप' बन गया। उसके लिए मैंने न कोई एड किया है, न मैंने उनको कहा कि भैया बनाओ, न मैं वो सोप इस्तेमाल करता हूँ। उसके नाम से रेस्टोरेन्ट खुले हुए हैं। पेरिस में मेरे कोई दोस्त गये थे, कई साल पहले, बोले– साहब संतूर रेस्टोरेन्ट में वहाँ पेरिस में खाना खाया हमने। ये जो हो रहा है तो ज़ाहिर है संतूर दुर्लभ वाद्य तो नहीं रहा। मेरे पिताजी की आत्मा को इसमें बड़ी शान्ति मिलती होगी कि ऐसा हुआ। उन्होंने कहा था कि भई तुमको ये साज़ बनाना है, एक दिन तुम्हारा नाम और इसका नाम एक हो जायेगा। उनकी आत्मा को बहुत ख़ुशी हो रही होगी। बाक़ी मैं ये कोशिश करता हूँ कि हमारे जितने और भी वाद्य हैं, जो किसी ज़माने में हमारे दिग्गज वाद्य थे, देखिए वाद्य इन इटसेल्फ़ इज़ नथिंग। उसको हैंडिल कौन कर रहा है और उस शख़्स की हैंडिल करने की मंशा क्या है और उसके पीछे कौन–सी शक्ति जुड़ी हुई है, उससे वाद्य बनता है। अगर मैं बिस्मिल्लाह ख़ाँ साहब की शहनाई अपने हाथ में ले लूँ, और सोचूँ कि मैं एक म्यूज़िशियन हूँ लेकिन वो सुर मैं नहीं निकाल पाऊँगा। वो उन्हीं का काम था। तो कलाकार जो होता है, उसकी वजह से वाद्य बनता है। वाद्य अपने आप में, ख़ुद तो बजता नहीं और जो बजाने वाला है, उसके पीछे भी कोई शक्ति होती है तब वह बजा पाता है।

एक मेंटल रियाज़ होता है, एक फ़िज़ीकल रियाज़ होता है। जब आप मेंटल रियाज़ करते हैं, कुछ आइडियाज़ आते हैं तो कुछ चीज़ों को आप सोचते हैं। फिर आप साज़ लेकर बैठते हैं तो प्रेक्टिकली उसकी कोशिश करते हैं। संगीत मेरे अन्दर चल रहा होता है।

●●●

मैं संगीत में इतना लगा रहा कि घर-बार का मुझे कुछ पता नहीं था। मेरे दो बेटे हैं। राहुल मेरा छोटा बेटा है। रोहित मेरा बड़ा बेटा है, वह म्यूज़िक में नहीं है। फॉक्स स्टार स्टूडियो फ़िल्में बनाते हैं, रोहित शर्मा इण्टरनेशनल डिस्ट्रीब्यूशन का हेड है। मेरी पत्नी का बच्चों की परवरिश में बहुत बड़ा योगदान है। बच्चों की देख-रेख, पढ़ाई सारा ज़िम्मा उन्होंने ही बख़ूबी निभाया। उनका बहुत बड़ा सेक्रीफ़ाइज़ है। अभी मैंने बाहर जाना कम कर दिया है। हर साल मैं अमेरिका जाता था। एक ट्रिप में बीस-पच्चीस प्रोग्राम। ये 1968 से चल रहा है। मैं मई के महीने में वापस आ जाता था, मार्च-अप्रैल दो महीने बाहर रहता था। फिर पूरी फ़ैमिली, बच्चों को लेकर हम लोग कश्मीर जाते थे और एक-डेढ़ महीना वहाँ गुज़ारते थे। बहुत अच्छी यादें हैं उनके साथ समय गुज़ारने की। अब तो बच्चे बड़े हो गये, उनके बच्चे हो गये, मैं ग्राण्ड-फादर बन गया। मैं कोई सोशलाइज़ नहीं करता। लोग मुझसे ख़फ़ा भी होते होंगे पर मुझे नाराज़गी नहीं दिखाते।

●●●

जितने युवा तबला वादक हैं, सब ज़ाकिर की तरह बाल रखने और उन्हीं की तरह हाव-भाव बनाने की की कोशिश करते हैं। नेचुरल है, लेकिन ज़ाकिर रियाज़ कर रहे हैं अपना। उनके पिता अल्लारखा ख़ाँ साहब से उसका काम अलग है। ख़ाँ साहब का एक्सप्रेशन जो था वो ज़ाकिर में भी है, अपने म्यूज़िक को एन्जॉय करते हुए बजाना, लेकिन वो जुदा थे। ज़ाकिर अपने में नैचुरल है। जिरॉक्स नहीं है उनका। ज़ाकिर ने तबले को विस्तार दिया। कई चीज़ें और एड कर दीं। उस्ताद अल्लारखा ख़ाँ साहब के पास कितने लोग सीखे, लेकिन ज़ाकिर हुसैन नहीं बने। ज़ाकिर हुसैन के भाई हैं तौफ़ीक़। तौफ़ीक़ ने एक दूसरा इंस्ट्रूमेण्ट ले लिया जेम्बे, उस पर पूरा तबला बजा दिया। लाजवाब! लेकिन उसने देख लिया कि ज़ाकिर की अपनी जगह है, मैं तबला छोड़ देता हूँ। यह भी एक सोच है।

●●●

मैंने कभी यह सोचा ही नहीं कि राहुल को मैं म्यूज़िक सिखाऊँगा। ख़ासकर के मेरी वाइफ़ ने। उसने बहुत स्ट्रगल देखी थी मेरी लाइफ़ में। पूरी कोशिश की गयी कि बेटे म्यूज़िक में नहीं आये। मैंने भी कहा, अगर उसके भीतर संगीत होगा तो वह रुकेगा नहीं। वाय शुड वी फोर्स? इत्तफ़ाक़ देखिए। राहुल जब शिशु था तब मैं जापान गया। केसियो एक छोटा सा खिलौना होता है न, वो मैं लेकर आया। मैंने उसको दे दिया। मैंने सोचा कि ये दो-चार दिन बजाकर तोड़ देगा। एक दिन मैं बाहर खड़ा था, मैंने देखा कि उसने उस पर एक ट्यून कम्पोज़ कर दी। मैंने अपनी वाइफ़ को यह बताया। उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, बिलकुल म्यूज़िक नहीं सिखायेंगे। जब वो कॉलेज जाने लगा तब सीरियसली उसने म्यूज़िक सीखना शुरू किया, बेसिक्स 'सा रे ग म' गले से निकलने लगा। तबले का ठेका, फिर संतूर। ... ईश्वर, नियति को जो मंज़ूर था, वहीं हुआ। राहुल का काम देखकर मुझे गहरा संतोष है।

छाया: जतिन कंपानी

वे सोपोरी बाज के बेताज फ़नकार थे

अलविदा

जम्मू-कश्मीर सरज़मीं के एक और विलक्षण संगीतकार पंडित भजन सोपोरी ने भी इस नश्वर संसार को अलविदा कह दिया। दो जून को दिल्ली के निकट गुरुग्राम में उन्होंने आख़िरी साँस ली। वे सोपोरी बाज परंपरा में संतूर को नई प्रतिष्ठा देने वाले गुणी कलाकार और संगीत के गहरे जानकार थे। उनके पूर्वज सूफ़ियाना घराने से ताल्लुक़ रखते थे और श्रीनगर में रहते हुए उनके कुल की पीढ़ियों ने तालीम तथा साधना के रास्ते पर चलते हुए अपनी अलहदा पहचान बनाई।

नेहा कामरा

उम्र के चौहत्तरवें सोपान तक पहुँचते भजन सोपोरी ने अपनी संगीतिक रचनात्मकता को बहुआयामी विस्तार दिया। संतूर वादन की स्वतंत्र प्रस्तुतियों के साथ ही आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए उन्होंने अनेक ऐसी संगीत रचनाएँ कीं जिन्हें प्रसारण के बाद लाखों संगीत प्रेमियों ने सराहा। वे भारतीय संगीत के साथ ही पश्चिमी संगीत के भी गहरे जानकार थे। भारत सरकार ने 2004 में उन्हें पद्मश्री की उपाधि से अलंकृत किया। इससे पूर्व 1992 में संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार से वे सम्मानित किया जा चुके थे। अपने गृह राज्य जम्मू-कश्मीर ने लाइफटाईम अचीवमेंट अवार्ड देते हुए उनकी भूमिका को 'सांस्कृतिक राजदूत' का संबोधन दिया।

सोपोरी ने 1953 में अपनी पहली सार्वजनिक प्रस्तुति दी थी तब वे महज़ पाँच बरस के थे। उन्हें घर पर ही उनके दादा एससी सोपोरी और पिता एसएन सोपोरी से संतूर की शिक्षा मिली थी। दादा और पिता ने इन्हें गायन शैली व वादन शैली की तालीम दी। इस विरासत को उन्होंने गहरे आत्मसात किया।

वे अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. थे। वॉशिंगटन विश्वविद्यालय से उन्होंने पश्चिमी शास्त्रीय संगीत का अध्ययन किया। इस पढ़ाई ने उनके भीतर संगीत की वैश्विक दृष्टि विकसित की। पहली नौकरी उन्होंने आकाशवाणी में की। यहाँ सेवाएँ देते हुए देश के गुणी और अग्रणी संगीतकारों से मेलजोल बढ़ा। मुख़्तलिफ़ संगीत धाराओं और प्रवृत्तियों से वे मुतासिर हुए। समानांतर रूप से उनकी संतूर साधना भी जारी रहीं। देश-विदेश की यात्राएँ करते रहे। इस बीच उन्होंने 'सा मा पा' (सोपोरी अकादमी, संगीत और प्रदर्शन कला के लिए) नामक एक संगीत अकादमी भी शुरु की। यह अकादमी भारतीय शास्त्रीय संगीत को बढ़ावा देने के कार्य कर रही है। सा मा पा अकादमी में क़ैदियों को संगीत की शिक्षा दी जाती है, ताकि उनके और समाज के बीच भावनात्मक संबंध बनें। अकादमी ने कई संगीतकारों को प्रशिक्षित किया है और पुराने संगीत उपकरणों को पुनर्जीवित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इसके लिए अकादमी को 2011 में जम्मू कश्मीर सरकार ने डोगरी पुरस्कार प्रदान किया था। पंडित भजन सोपोरी विश्व ख्याति प्राप्त सितार वादक और संगीतकार पंडित रविशंकर से बेहद प्रभावित थे। आईसेक्ट प्रकाशन, भोपाल द्वारा हाल ही कला

समीक्षक विनय उपाध्याय की कला विभूतियों से हुई भेंटवार्ताओं पर केंद्रित पुस्तक 'सफ़ह पर आवाज़' में पंडित भजन सोपोरी का साक्षात्कार रविशंकर से उनकी निकटता का खुलासा करता है।

वे एक वाक़या सुनाते हैं। ...सत्तर साल पुरानी बात है। पंडित रविशंकर श्रीनगर आए थे। मेरी उम्र उस समय छः-सात बरस की रही होगी। उन दिनों राजनेता डॉ. कर्णसिंह जो, ख़ुद संगीत और अन्य कलाओं में गहरी रुचि रखते थे, उनकी पहल पर श्रीनगर के ही एक महल में पंडितजी की एक सभा आयोजित की गई थी। मेरे पिता तब श्रीनगर के एक स्कूल में अध्यापक थे और पंडित रविशंकर से उनका अच्छा परिचय हो गया था। पिताजी के आग्रह पर पंडितजी उनके स्कूल भी गये थे। वो पहला लम्हा था जब मैंने उनके दर्शन किये थे। यही वो मौक़ा भी था जब पिताजी ने उन्हें मेरी प्रतिभा से अवगत कराया था।

निश्चय ही उनके अलौकिक,भव्य व्यक्तित्व ने मुझे बहुत गहरे तक प्रभावित किया था। इस परिचय के बाद उन्हें मेरे सांगीतिक रुझान की बहुत सी जानकारियाँ मिल गयीं थी। वे स्वयं भी बड़ी पारखी नज़र रखते थे। जब युवा होता गया और संगीत में मेरी दखल बढ़ने लगी तो उन्हें यह भी पता चला कि मैं संतूर बजाने के साथ ही म्यूज़िक कंपोजर के रुप में भी सक्रिय हूँ। वे बहुत ख़ुश होते यह जानकर कि मैं मल्टी डायमेंशनल हूँ। मेरी उनसे बहुत प्रोफेशनल बात होती। मैं उनकी शख़्सियत से इसलिए भी बहुत प्रभावित रहा कि वे हमेशा नया सोचते और दूसरे संगीतकारों की बात को भी रुचि लेकर सुनते थे। उनसे हुआ संवाद सदा ही रचनात्मक और रोचक होता। उनकी सोच खुली और पारदर्शी थी।

साज़ ख़ुद बोलते हैं। उनके ख़ामोश तारों में वो सब कुछ है जो इंसान के भीतर धड़कता है। बस, उनके भीतर बसी अंतर्ध्वनियों को, नाद को ठीक से छूने या हासिल करने की दरकार होती है। यह लंबी और गहन साधना से आता है। मैंने भी संतूर के साथ जीते हुए इंसानियत की रूह को धड़कते सुना है।

भजन सोपोरी बताते हैं कि 1972-73 में उनका अमेरिका जाना हुआ। वहाँ लोगों की ज़ुबान पर एक ही नाम था- पंडित रविशंकर। एक भारतीय संगीतकार होने के नाते मेरा सीना गर्व से फूल गया। लोगों की रूह में, उनकी यादों में, अहसासों में भीतर तक बस गये थे पंडितजी। ये होती है पापुलेरिटी। उनके सामने भी विदेशी श्रोता चुनौती रहे होंगे जिन्हें हिन्दुस्तानी बाज पर हिन्दुस्तानी राग सुनाना है। सिर्फ़ परफ़ॉर्म ही नहीं करना बल्कि हमारे संगीत के प्रति उनमें गहरी आसक्ति पैदा करना है।

संतूर और भजन सोपोरी के संयोग को लेकर किये गए एक सवाल के जवाब में वे कहते हैं- साज ख़ुद बोलते हैं। उनके ख़ामोश तारों में वो सब कुछ है जो इंसान के भीतर धड़कता है। बस, उनके भीतर बसी अंतर्ध्वनियों को, नाद को ठीक से छूने या हासिल करने की दरकार होती है। यह लंबी और गहन साधना से आता है। मैंने भी संतूर के साथ जीते हुए इंसानियत की रूह को धड़कते सुना है।

नायिका

पंडवानी का परचम

कला कोई भी हो, वह तैयारी या रियाज़ मांगती है। तीजन ने अपने को तैयार किया, माँजा या परिष्कृत किया और सबसे बढ़कर उसे नवाचारित भी किया। तीजन वाचिक को आंगिक अभिनय से निखार देती है। माहौल के मुताबिक़ शब्द चयन में थोड़ा हेरफेर। वह गायन, नृत्य, प्रलाप, वादन, संवाद और अभिनय से अपना 'डोमेन' रचती है और दर्शकों को बाँध लेती है।

सुधीर सक्सेना

साँझ ढल चुकी थी और आहिस्ता-आहिस्ता बस्ती पर स्याही पसर रही थी। रोशनी के नाम पर लैंपपोस्टों और घरों में रोशन बल्बों का ही सहारा था, अन्यथा बस्ती इतनी लकदक न थी कि आँखें चुंधिया जाएँ। वह सन् 1978 का सर्द दिसंबर मास था। संभवतः दिसंबर का आख़िरी हफ़्ता। सर्दी नामालूम सी थी और फ़क़त स्वेटर से उससे मोर्चा लिया जा सकता था। हम गुढ़ियारी में थे। यह रायपुर में रेलवे स्टेशन के आगे शहर के उलटी ओर बसी बस्ती थी। रिहायश जहाँ ख़त्म होती है, वहीं तालाब था। तालाब के किनारे एक तिकोना तंबू गड़ा था। तंबू जिस बाँस की बल्ली पर गड़ा था, उस पर ठुकी कील पर लालटेन टंगी थी, ताक़त भर बज़िद अंधेरे से लड़ती हुई। तंबू में ज़रूरत का घरेलू सामान बिखरा हुआ था- चोट खाया टिन का बक्सा। कुछेक बर्तन। मिट्टी का अस्थायी चूल्हा। थोड़ा-बहुत मेकअप का सामान, जैसे लिपिस्टिक, काजल, पावडर, बिंदी, तेल-कंघी। झींगुरों और मेंढ़कों की आवाज़ बेरोक आ रही थी। जब-तब रेलपाँत से रेल गुज़र जाती थी। और हाँ, एक तंबूरा भी वहाँ चारपाई के सहारे टिका हुआ था।

हम एक श्यामल बरन अच्छे सौष्ठव की, पाँच फुट से कुछ इंच ऊपर क़द की ख़ुशमिज़ाज महिला के अस्थायी डेरे पर थे। महिला की आँखों में बला की चमक थी और बात करते हुए वह जब-तब और तीक्ष्ण हो जाती थी। उसके होंठ पान की पीक से लाल थे और दाँतों के किनारों पर लाल लकीरें थीं। ज़ाहिर था कि वह पान की शौक़ीन है। जिस चीज़ ने सबसे पहले आकर्षित किया, वह था उसका ग़ज़ब का आत्मविश्वास। झिझक से उसका वास्ता न था। याद पड़ता है कि वह चटख लाल रंग की साड़ी पहने थी, बेमेल ब्लाउज के साथ। चटख बिंदी। चाँदी के थोड़े से आभूषण। करीने से काढ़े हुए केश। वह हँसती तो उसके दाँत चमकते थे और साथ ही चमकता था उसका बिंदासपन। कोई बात क़ाबिल-ए-दाद होती तो वह बख़ुद अपनी जाँघ पर थाप देकर आनंदित हो लेती थी।

तंबू में खटिया पर सामने बैठी इस साधारण छत्तीसगढ़िया औरत का 'कॉन्फ़िडेंस-लेवल' औसत से काफ़ी ऊँचा था और वह बातचीत में बरबस छलकता था। वही हुआ। देखते ही देखते वह लोककला के परिदृश्य में छा गयी। उसने सरहदें लाँघी और उसकी ख्याति ने दिशाएँ। एक दशक के भीतर वह सेलिब्रिटी थी। सन् 1988 में उसे पद्मश्री से नवाज़ा गया। फिर तो पदकों की झड़ी लग गयी। यह वह स्त्री थी, जिसने आकाशवाणी से बतौर पारिश्रमिक पहला चेक लिया तो पावती में हस्ताक्षर न कर अंगूठा लगाया था। उस रात गुढ़ियारी में पहली दफ़ा रूबरू हुई यह स्त्री थी तीजनबाई। वह आज भी हमारे बीच हैं। इस 24 अप्रैल को वह 66 साल की हो गईं। अब वह दादी माँ हैं। उसकी ख्याति भी लंबा सफ़र तय कर चुकी है। सन् 2003 में उसे पद्मभूषण मिला और सन् 2019 में भारत के महामहिम राष्ट्रपति के हाथों पद्मविभूषण। पद्म पुरस्कारों से उसका सम्मान उस लोक कला का भी सम्मान है, जिसे उसने तमाम तकलीफ़ें उठाकर निबाहा। रायपुर में गुढ़ियारी में सर्द दिसंबर में लालटेन की धुंधली रोशनी में लिया गया वह इंटरव्यू उसकी ज़िंदगी का पहला साक्षात्कार था। इस इंटरव्यू के निमित्त बने थे लोककला मर्मज्ञ निरंजन महावर। इंटरव्यू 'नवभारत', रायपुर में छपा था। उसकी कतरन मेरी बेतरतीब फ़ाइलों के ज़ख़ीरे में कहीं सुरक्षित है। जस की तस तो नहीं, मगर उसकी कही कुछ बातें स्मृति में हैं।

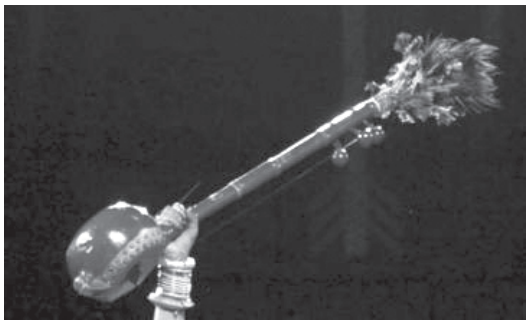

तीजन ने पीड़ा-प्रताड़ना सही लेकिन पंडवानी नहीं छोड़ी। पंडवानी में ही उसकी मुक्ति थी, पीड़ा से भी, दैन्य से भी, वर्जनाओं से भी। पंडवानी ही उसे स्याह बोगदे के बाहर उस ठौर ले गयी, जहाँ खुली हवा थी, रोशनी थी और उसे सराहती हुई एक बड़ी दुनिया थी।

तीजन का जन्मगाँव इस्पात नगरी भिलाई से अनतिदूर है। ज़ीरोमाइल से 14 किमी दूर गनियारी को अब भिलाई में ही मानिये। पिता चुनुक लाल। माँ सुखमती। पाँच भाई-बहनों में सबसे बड़ी। जाति की पारधी। उस अंत्यज समाज की जो मूलतः राजपूत समाज से संबद्ध होने के बावजूद जनजातियों में परिगणित है और आखेट तथा पक्षियों को पकड़ने के लिए जानी जाती है। पारधी परिन्दों को पकड़ने के लिए भाँति-भाँति के जाल या फंदे बुनने में निपुण होते हैं। बहरहाल महाराष्ट्र-गुजरात की अपेक्षा छत्तीसगढ़ में इनकी आबादी कम है। कई दशकों तक ज़रायमपेशों में शुमार पारधी अब घुमंतू जनजाति है। वे झाड़ू-चटाई, टोकरी आदि अच्छी बना लेते हैं। विडंबना देखिये कि जब जात-बाहर विवाह के कारण तीजन पारधी-समाज से निष्कासित हुई तो यही पेशा गाँव के बाहर झोपड़ी बनाकर बर्तन माँज-मूंजकर जीवन-यापन में उसके काम आया, मगर यह स्थिति ज़्यादा दिन तक नहीं रही। कला ने उसे दो जून की रोटी दी, नौकरी दी, सम्मान और प्रतिष्ठा दी और उसे उस पायदान पर लाकर खड़ा कर दिया, जहाँ तक पहुँचना विपन्न और हतभाग्य पारधियों के लिए ख़्वाब में भी दूभर था।

तीजन को पंडवानी विरासत में मिली। मातृकुल से। उसके नाना बृजलाल पारधी पंडवानी कहते थे। बालपने में तीजन ने नाना से पंडवानी सुनी और वह उसे कंठस्थ हो गयी। तेरह की वय में समीपवर्ती गाँव चंदखुरी में उसे पहली बार पंडवानी गायन का मौक़ा मिला। दक्षिणा या चढ़ावे में मिले दस रुपये उसकी पहली कमाई थी। सवर्ण, विशेषतः ब्राह्मण रुष्ट हुए कि एक तो स्त्री और फिर पारधी होकर पवित्र कथा का वाचन। विरोध, लांछन, वर्जना का दौर चला। तीजन में हठ भी था और भगवान कृष्ण में अटूट भक्ति भी। वे उसके स्वप्न में आते थे। जीवन कष्टों से बिंधा था। पहले पति से अलग हुई। दूसरा पति ज़ालिम निकला। वह अक्सर उसकी पिटाई करता था। तीजन ने पीड़ा-प्रताड़ना सही लेकिन पंडवानी नहीं छोड़ी। पंडवानी में ही उसकी मुक्ति थी, पीड़ा से भी, दैन्य से भी, वर्जनाओं से भी। पंडवानी ही उसे स्याह बोगदे के बाहर उस ठौर ले गयी, जहाँ खुली हवा थी, रोशनी थी और उसे सराहती हुई एक बड़ी दुनिया थी।

कला कोई भी हो, वह तैयारी या रियाज़ माँगती है। तीजन ने अपने को तैयार किया, माँजा या परिष्कृत किया और सबसे बढ़कर उसे नवाचारित भी किया। सबलसिंह चौहान की छत्तीसगढ़ी महाभारत कंठस्थ करने के बाद उसने उमेद सिंह देशमुख से विधिवत प्रशिक्षण लिया। पंडवानी पुरुषों के वर्चस्व का क्षेत्र था। बैठकर वाचन की वेदमती शैली उनके उपयुक्त थी, लेकिन तीजन ने इसकी विलोम कापालिक शैली चुनी। अब देखो तो लगता है कि तीजन का चयन सही था। कापालिक शैली में खड़े-खड़े 'महाभारत' गायी जाती थी। तबला, खड़ताल, ढोलक, मंजीरा,

हार्मोनियम जैसे इने-गिने वाद्य। साथ में तंबूरा। तीजन का बदन दोहरा है। आवाज थोड़ी कर्कश। कहें तो थोड़ा मर्दानापन। तंबूरे से वह कई प्रयोजन साधती है। वह अर्जुन का बाण है और भीम की गदा भी। तीजन वाचिक को आंगिक अभिनय से निखार देती है। माहौल के मुताबिक शब्द चयन में थोड़ा हेरफेर। वह गायन, नृत्य, प्रलाप, वादन, संवाद और अभिनय से अपना 'डोमेन' रचती है और दर्शकों को बाँध लेती हैं। चीरहरण और दु:शासन वध उसके प्रिय प्रसंग हैं। उसकी बुलंद आवाज़ और मंच पर तीव्र पदाघात अलग रस की वृष्टि करते हैं। वह ख़ूब जानती है कि मंच पर नाटकीयता का निर्वाह कैसे किया जाता है। तीजन निरक्षर हैं। बड़े-बड़े हरफ़ में दस्तख़त करना उसने सीख लिया है। अनपढ़ होने का उसे मलाल नहीं है। मोरपंख जड़ा तंबूरा उसका वाद्ययंत्र है, आयुध भी और साथी भी। तंबूरा हाथ में आते ही उसमें ओज आ जाता है। सन् 80 के दशक में उस पर रंगकर्मी हबीब तनवीर की निगाह पड़ी। कला-गुरु को कलासाधिका की प्रतिभा चीन्हते देर न लगी।

वह भारत महोत्सव में गयी। दिल्ली में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के सम्मुख उसने पंडवानी प्रस्तुत की। उसे जगह-जगह से न्यौता मिला। दिशायें गौण हो गयीं। वह फ्रांस, जर्मनी, मॉरीशस, तुर्की, रोमानिया, बांग्लादेश और स्विट्जरलैंड गयी ही, माल्टा, ट्यूनीशिया और साइप्रस भी हो आई। फ्रांस उसे सर्वप्रिय है। वहाँ वह कई बार हो आई हैं। उसके हिसाब से इवनिंग इन पेरिस का जवाब नहीं। पहली फ्रांस यात्रा के बाद उसने 'आई-ब्रो' (भौहें) बनाना सीख लिया है। आधुनिक सौन्दर्य प्रसाधन भी उसके जीवन में आ गये हैं। तुलसीराम देशमुख में उसे पति मिला और साथी भी। पेटी (हार्मोनियम) वादक देशमुख उसके कामों में हाथ भी बंटाते थे और उसे साइकिल से भिलाई इस्पात संयंत्र के उसके दफ़्तर भी छोड़ आते थे।

''हमारे यहाँ पढ़ाई का कोई रिवाज़ न था''- तीजन ने कहा था-''मैं पढ़ी होती तो शायद पंडवानी गायिका नहीं बनती। बहुत दु:ख झेले, लेकिन सरस्वती मैया की कृपा कि पंडवानी मेरी ज़िंदगी हो गयी। सब उसी का दिया है।''

तीजन अपने पति को 'मिस्टर' कहती है। गोदरेज का 'डाई' (ख़िज़ाब) उसे भाता है। पान के बिना वह रह नहीं सकती। बंगला पान उसे पसंद है, अलबत्ता लवंग-इलायची युक्त सादा पत्ता भी चाव से चबाती है। अचार की वह शौक़ीन है। ख़ासकर आम का अचार। वह ठेठ छत्तीसगढ़िया है। एक जून बोरे बासी और चटनी उसकी आहारचर्या है।

तीजन के जीवन-वृत्त में पदकों की लंबी तालिका है। उसे देवी अहिल्या सम्मान मिला और संगीत नाटक अकादेमी का पुरस्कार भी। सन् 2016 में उसे एस. सुब्बलक्ष्मी शताब्दी पुरस्कार मिला और 2018 में फुकुओका पुरस्कार। उसे ईसुरी पुरस्कार से भी नवाज़ा गया। एक चरण के बाद पुरस्कार और सम्मान गौण हो जाते हैं। मुझे याद आता है श्याम बेनेगल का धारावाहिक 'भारत-एक खोज'। पं. जवाहरलाल नेहरु की कालजयी कृति 'डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया' पर आधारित इस सीरियल में बेनेगल ने 'महाभारत' को साकार करने के लिये तीजनबाई को चुना था। यह तीजन की उपलब्धि थी और पुरस्कार भी।

तीजन निरक्षर है, लेकिन वह जीवन और जगत के आखरों को बख़ूबी चीन्हती और सस्वर बाँचती है। उसने लोककला को क्लासिकी ऊँचाइयाँ दी हैं। चीरहरण के प्रसंग से वह दर्शाती है कि नारी के अपमान में गौरवशाली वंशों का भी पतन या विनाश निहित है। मिथकों की शैली में बात करें तो तीजनबाई को विधि ने पंडवानी के लिये ही रचा था।

हुनरमंद अदाकारों की जुगलबंदी

ओम शिवपुरी और सुधा शिवपुरी फ़िल्म जगत की मशहूर शख़्सियतें थीं। रंगमंच से शुरु कर दोनों ने भारतीय सिनेमा में काफ़ी नाम कमाया। ओम शिवपुरी ने लगभग सौ फ़िल्मों में अभिनय किया। सुधा ने भी एक दर्जन से अधिक फ़िल्मों में काम किया। इसके अलावा, सुधा में क़रीब दो दर्जन टीवी सीरियलों में भी महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाईं। रंगमंच, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय तथा फ़िल्म और टेलीविजन प्रशिक्षण संस्थान से निकले कई कलाकारों ने फ़िल्मी दुनिया में स्थान बनाया और अपने अभिनय से दर्शकों के मन में छाप छोड़ी। हालाँकि यह आसान नहीं था। बहुतों ने बरसों-बरस संघर्ष किया। भूखे पेट रेलवे प्लेटफॉर्म पर सोए। गैरेज में रहे। स्टुडियो के चक्कर काटे। अपमानित हुए। जिनमें प्रतिभा और हिम्मत थी, वे डटे रहे और अंततः कामयाब हुए। सितारा बन चमके। सुधा और ओम शिवपुरी भी एनएसडी से निकले कलाधर्मी थे। हालाँकि उन्हें फ़िल्मों में प्रवेश के लिए उस तरह का संघर्ष नहीं करना पड़ा। कुशल, निष्णात रंगकर्मियों के रुप में सुधा और ओम की छवि निर्मित हो चुकी थी। राजवंश और गुलज़ार ओम जी की अभिनय-क्षमता से प्रभावित थे। ओम को पहला मौक़ा राजवंश ने अपनी फ़िल्म जीवन-संग्राम में दिया था। यद्यपि गुलज़ार की फ़िल्म 'कोशिश' पहले रिलीज हुई थी। दोनों फ़िल्मों में उनके क़िरदारों को ख़ूब पसंद किया गया सिलसिला चल पड़ा। ओम गुलज़ार के चहेते, पंसदीदा कलाकार हो गए।

क़िस्सा-ए-ओम-सुधा

सूर्यकांत नागर

दास्तान

पहले वह क़िस्सा जो सुधा शिवपुरी से शुरु होता है। सुधा शिवपुरी असल में सुधा शर्मा थी। आरंभ से इन्दौर में अपने मामा खेमराज जोशी के साथ नंदलालपुरा स्थित मकान में रहती थी। उसके मकान और मेरे मकान के बीच बस एक छोटी सी पुरानी मस्जिद थी। सुधा का बड़ा भाई प्रेम शर्मा भी मामाजी के साथ ही रहता था। वह मेरा मित्र और सहपाठी था। इसलिए अक्सर उसके वहाँ आना-जाना होता था। मुझसे चार बरस छोटी सुधा भी हिल-मिल गई थी। सुधा के मामा कवि, पत्रकार और नेता थे। इन्दौर नगर पालिका में पार्षद भी रहे। छोटे मामा सदाशिव जोशी के व्यक्तित्व में घोर विरोधाभास था। वे कुशल शास्त्रीय नृत्यकार थे, साथ ही पंजा लड़ाने वाले चेम्पियन भी। सुधा शुरु से अंत तक मुझे सूर्यकांत दादा के बजाय श्रीकांत दादा कहती रही। मित्र प्रेम की वजह से शिवपुरी दम्पती से मेरा संबंध अंत तक बना रहा।

बाद में सुधा अपनी माता-संग जयपुर शिफ़्ट हो गई, यद्यपि इन्दौर आना-जाना बना रहा। वहाँ उसने पढ़ाई के साथ नाटकों में भाग लेना आरंभ किया। ख़ास तौर पर रेडियो नाटकों में। ओम शिवपुरी भी उन दिनों रेडियो नाटकों में भाग लिया करते थे। इस दौरान दोनों में दोस्ती हुई जो परवान चढ़ती गई। प्रेम के अंकुर फूटना लाज़िमी थे। वे फूटे और शनैः शनैः जड़ जमाते गए। फिर दोनों ने एनएसडी में दाखिला लिया। दोनों सन् 1961 से 1967 तक एनएसडी में साथ थे। इस बीच सुधा की माताजी भी दिल्ली शिफ्ट हो गई थी और मालवीय नगर में किराए के मकान में सुधा के साथ रहने लगी थी। दरअसल माँ को सुधा और ओम का

मेल-मिलाप पसंद नहीं था। इसीलिए एक तरह से निगरानी के लिए ही वे दिल्ली शिफ्ट हुई थीं। मैं एक बार सपत्नीक मालवीय नगर वाले मकान पर गया था। तब सुधा घर पर नहीं थी। माताजी ने बूंदी का रायता और पूरी बनाकर हमें भोजन कराया था।

एनएसडी में प्रशिक्षण के दौरान ओम और सुधा ने कुछ नाटकों में साथ-साथ अभिनय किया था। सुधा ने एक जापानी नाटक की अंग्रेज़ी में अनूदित पुस्तक, हिन्दी-अनुवाद के लिए मेरे पास भेजी थी। मैं अंग्रेज़ी का कोई तीसमार ख़ाँ नहीं था। बस, मुझे अच्छी अंग्रेज़ी और बुरी अंग्रेज़ी की समझ थी और नाटकों में रुचि भी। पूरी मशक़्क़त के साथ मैंने अनुवाद किया था जो उन्हें पसंद आया था। स्मरणीय है कि प्रामाणिक और स्वाभाविक अनुवाद के लिए महज़ मेहनत ही काफ़ी नहीं होती, उसके लिए अनुवादक को विषय वस्तु का ज्ञान, दोनों भाषाओं की प्रकृति और मुहावरों की जानकारी और लेखक के मनोभावों को आत्मसात करने की क्षमता होनी चाहिए। सुधा कला के प्रति समर्पित थी। रंगमंच और अभिनय के क्षेत्र में ऊँची उड़ान के उसके अपने सपने थे। वह कहती भी थी- ''हम तो दरिया हैं/ हमें अपना हुनर मालूम है/ जिस तरफ़ भी चल पड़ेंगे/ रास्ता हो जाएगा।''

इश्क़ नहीं आसां

एनएसडी का कोर्स पूर्ण होने के पश्चात सुधा की माताजी की इच्छा थी कि सुधा का विवाह इन्दौर के एक अत्यंत प्रतिष्ठित कांग्रेसी नेता के व्यवसायी पुत्र के साथ कर दिया जाए। अब वे दोनों ही स्मृति शेष हैं। उस सुपुत्र का कला और साहित्य से कुछ लेना-देना नहीं था। उस बेमेल जोड़ी का निभना मुश्किल था। सुधा के मन में तो ओम जी की तस्वीर बसी थी। फिर वह प्यार ही क्या जो अवरोधों के आगे घुटने टेक दे। प्रेम सोचकर तो किया नहीं जाता। वह हृदय से होता है और उसका इज़हार आँखों से। उस एहसास को परिभाषित करना कठिन है। जो भी हो, सुधा उस रिश्ते के लिए तैयार नहीं थी। उन दिनों उसकी माँ और अन्य परिवारजन काफ़ी तनाव में थे। अंततः विजय प्यार की हुई। सुधा के अभिभावकों को झुकना पड़ा। सन् 1967 में एनएसडी का प्रशिक्षण पूर्ण होने के पश्चात 1968 में सुधा और ओम जी प्रणय सूत्र में बंध गए।

सादगीपूर्ण शादी

विवाह दिल्ली के मॉडल स्कूल के एक टीचर्स स्वार्टर में सम्पन्न हुआ था। सुधा ने इस स्कूल में कुछ समय तक कला-संस्कृति शिक्षक के रुप में अपनी सेवाएँ दी थीं। उन दिनों ओम जी की आर्थिक स्थिति संतोषप्रद नहीं थी। मुफ़लिसी के दिनों में वे बंगाली मार्केट के एक रेस्तरां में खाना खाते थे, कई बार उधार खाते में। एक दिन ख़ुद मुझे प्रत्यक्ष इसका अनुभव हुआ था। हालात ये थे कि शादी के लिए इन्दौर से पहुँचे हम लोगों को तो टीचर्स क्वार्टर में ठहरा दिया गया था, परंतु दो दिनों तक ओम जी को स्कूल केम्पस स्थित एक डोरमेट्री में अकेले फ़र्श पर सोना पड़ा था।

बहरहाल, बारात में एनएसडी के कुछ पुराने साथी और रंगमंच के कलाकार नाचते-गाते हुए आए थे। 'आधे-अधूरे' के ख्यात लेखक मोहन राकेश भी बारात में शामिल थे।

फ़िल्म 'आँधी' से जुड़ा एक रोचक क़िस्सा है। फ़िल्म पर इंदिरा गाँधी की छवि को अंकित करने का आरोप लगा था। इस चलचित्र में ओम जी ने विपक्षी नेता की भूमिका निभाई थी। उस भूमिका की उत्कृष्टता से प्रभावित हो गुलज़ार ने मज़ाक में कहा था 'ओम! मुझे पूरा विश्वास है कि तुम यदि चुनाव लड़ो तो निश्चित ही विजयी होगे।' अभिनय के खरेपन के प्रति इससे बढ़िया टिप्पणी और क्या हो सकती थी!

दिशांतर

एनसीडी से निकलकर ओम जी ने सुधा के साथ मिलकर नाट्य संस्था 'दिशांतर' की स्थापना की थी। इसके तहत उन्होंने तुग़लक, त्रिशंकु, कंजूस, आषाढ़ का एक दिन, गणदेवता, बिल्ली चली पहनकर जूता, ख़ामोश अदालत जारी है, आधे-अधूरे नाटकों में अभिनय किया और निर्देशन भी। आधे-अधूरे उनके द्वारा मंचित और निर्देशित बहुचर्चित नाटक है जो कई शहरों में खेला गया। ख्यात व्यंग्यकार शरद जोशी की प्रायोजना में जून 1970 में इसकी एक प्रस्तुति भोपाल में और दूसरी इन्दौर के रवीन्द्र नाट्यगृह में हुई थी। इंदौर की प्रस्तुति के लिए कुछ प्रॉपर्टी जुटाने में शरदजी के लघु भ्राता व्यंग्यकार रोमेश जोशी (अब वे भी स्वर्गीय) ने सहयोग किया था। यह बताना असंगत न होगा कि रोमेश जोशी मेरे साढ़ू भाई थे। सुधा और ओमजी दोनों ही कुशल रंगकर्मी थे और पात्र के मनोभावों को प्रस्तुत करने में दक्ष।

नाटक का तीसरा पाठ निर्देशक का पहला पाठ

ओम शिवपुरी के अनुसार नाटक की सफलता की पहली कसौटी दर्शक है। पाठक की प्रतिक्रिया महत्वपूर्ण है। यह नाटक का तीसरा पाठ है। पहला पाठ लेखन है। दूसरा निर्देशन और तीसरा दर्शकों की प्रतिक्रिया। दरअसल जो तीसरा पाठ है, वह निर्देशक के लिए पहला पाठ है। निर्देशक के लिए यह भी आवश्यक है कि वह लेखक के उद्देश्य और नाटक के सार को ठीक से आत्मसात करे। इसके अभाव में नाट्य प्रस्तुति भरभरा कर ज़मींदोज़ हो जाएगी। बादल सरकार द्वारा लिखित नाटक 'शेष नहीं' को छोड़ शेष सभी नाटकों का निर्देशन ओम जी ने किया था। चूँकि वे 'शेष नहीं' के मूल भाव को ठीक से ग्रहण नहीं कर पाए थे, अत: उसके निर्देशन का दायित्व उन्होंने ख्यात रंगकर्मी रामगोपाल बजाज को सौंपा था।

बासु से मतभेद

'आधे-अधूरे' स्त्री-पुरुष के बिखरते रिश्तों पर आधारित एक महत्वपूर्ण रचना है। सुधा और ओम के जीवंत अभिनय और कलात्मक प्रस्तुति ने नाटक को यादगार बना दिया। इस पर फ़िल्म बनाने का काम शुरु हुआ था, पर नाम के अनुरुप फ़िल्म आधी-अधूरी ही रह गई। इसमें आर्थिक संकट से बड़ा संकट निर्देशक बासु भट्टाचार्य (बिमल रॉय के दामाद) का अड़ियल और तानाशाही रवैया था। कमलेश्वर निर्देशन का दायित्व बासु को सौंपने के पक्ष में नहीं थे, पर मोहन राकेश की ज़िद के आगे किसी की नहीं चली। आख़िर हश्र वही हुआ जिसकी आशंका थी। निर्माणाधीन फ़िल्म का एक उल्लेखनीय पक्ष यह था कि पात्रों को बिना मेकअप अपने स्वाभाविक गेटअप में उतरना था। फ़िल्म के न बन पाने का मलाल शिवपुरी के मन में आख़िर तक बना रहा।

लंकेश बनाम मोहन राकेश

कुछ आलोचकों का मत था कि स्त्री-पुरुष संबंधों पर लंकेश के लिखे नाटक 'आधे-अधूरे' से बेहतर हैं। प्रतिक्रिया चाहने पर ओम जी ने कहा था कि निस्संदेह लंकेश स्त्री-विमर्श के अच्छे जानकार है, पर यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि मोहन राकेश विशुद्ध रुप से साहित्यकार थे, जबकि लंकेश मुख्यत: नाटककार! उन्हें रंगमंच की बेहतर समझ थी। स्मरणीय है कि प्रभाकर श्रोत्रिय के चर्चित क्लासिक नाटक 'ईला' को लेकर भी इसी तरह के सवाल उठाए गए थे।

फ़िल्मों में प्रवेश

बेटी ऋतु के जन्म के बाद से पारिवारिक ज़िम्मेदारियाँ बढ़ने लगी थीं। उनके निर्वाह के लिए ओम जी ने फ़िल्मों की ओर रुख़ किया। 'जीवन-संग्राम' और 'कोशिश' से शुरु हुआ सिलसिला चल पड़ा। उन्होंने लगभग सौ फ़िल्मों में अभिनय किया। वृद्ध, दृष्टिविहीन व्यक्ति, विलन और नेता के किरदार निभाए। पहली फ़िल्म 'जीवन-संग्राम' में उनका रोल एक वृद्ध का था। कॅरियर के आरंभ में कोई नवोदित कलाकार वृद्ध का रोल करने के लिए तैयार नहीं होता है क्योंकि उसमें टाइप्ड हो जाने का ख़तरा है। मगर ओम शिवपुरी ने यह रिस्क उठाई। उनके क़िरदार की ख़ूब तारीफ़ हुई। इसी से प्रभावित हो गुलज़ार ने उन्हें कोशिश में भूमिका दी। इसके बाद तो उन्होंने नमकहराम, अचानक, आँधी, डॉन, दस नम्बरी, मौसम, किनारा आदि अनेक फ़िल्मों में अपने अभिनय का लोहा मनवाया।

'बिल्ली चली पहन कर जूता'

चौदह जुलाई 1937 को जन्मी सुधा प्रतिभा सम्पन्न अदाकारा थी। ओम जी के साथ कई नाटकों में मुख्य भूमिका तो निभाई ही, कुछ का निर्देशन भी किया। जर्मन निर्देशक मेहजिंग की कृति 'पुस इन बुट्स' के हिन्दी वर्जन 'बिल्ली चली पहनकर जूता' में अपने अभिनय को वह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानती थी। सुधा ने कुछ फ़िल्मों में भी अपने अभिनय की छाप छोड़ी। उनकी कुछ उल्लेखनीय फ़िल्में हैं- स्वामी, पिंजर, विधाता, माया मेमसाब, पायल की झंकार, खोज, परिवर्तन आदि। अभिनय क्षमता के लिए सुधा को राजस्थान संगीत अकादमी तथा किर्लोस्कर श्रेष्ठ अभिनेत्री अवार्ड से नवाज़ा गया था। बेटे 'बिनी' (विनीत) के जन्म के बाद से फ़िल्मों में अभिनय का क्रम क्षीण होता गया। वैसे ओम जी भी सुधा की अधिक व्यस्तता के पक्ष में नहीं थे। समय के

साथ-साथ उनमें मनोवैज्ञानिक बदलाव आने लगे थे। छोटी-छोटी बातों को लेकर चिंतित और परेशान रहने लगे थे। बच्चे हों या पत्नी, लौटने में तनिक विलम्ब होने पर अशुभ का विचार कर शंकाओं-कुशकाओं से घिर आते थे। सामान्य बातों को लेकर अतिरिक्त सावधानी बरतने लगे थे! सुधा को एक टी.वी. सीरियल की शूटिंग से लौटने में काफ़ी विलम्ब हो गया था तो ओम जी ऊपर-नीचे होने लगे थे। उन दिनों मोबाइल नहीं थे। न उनके पास उस बिल्डिंग का फ़ोन नम्बर या जहाँ धारावाहिक की शूटिंग हो रही थी। देरी की वजह यह थी कि धारावाहिक शूटिंग का वह आख़िरी दिन था और पेकअप से पूर्व सारा काम पूर्ण करना था। जो भी हो, सुधा-ओम के बीच असीम प्रेम था। सुधा पति को बेटे के घरेलू नाम बिनी से पुकारती और सम्बोधित करती थी।

एक बार ओम शिवपुरी गंभीर रुप से बीमार हुए तो उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए सुधा ने देवी से मन्नत माँगी थी कि यदि ओम स्वस्थ हो जाएँगे तो नंगे पैरों देवी-दर्शन को जाएँगी। मन्नत अनुसार इन्दौर में सुभाषनगर स्थित अपने भाई के मकान से तपती धूप में नंगे पैरों छह किलोमीटर दूर स्थित हरसिद्धि मंदिर में देवी-दर्शन करने गई थी और अग्नि परीक्षा में खरी उतरी थी।

साला-जीजा विवाद

ओम जी के साले साहब अर्थात् सुधा के भाई प्रेम शर्मा के वैसे तो अपने बहनोई से संबंध मधुर रहे और उन्होंने ओम-सुधा की समृद्धि का पूरा लाभ भी लिया। लेकिन एक ऐसा समय भी आया जब साले-बहनोई के बीच मतभेद उभरे। ख़ैर, अब दोनों इस दुनिया में नहीं हैं। बहुत पहले सुधा ने इन्दौर में ज़मीन का एक प्लॉट ख़रीदा था। लम्बे समय तक यूँ ही पड़ा रहा। भाई ने योजनाबद्ध तरीके से प्लॉट अपने नाम कराने के लिए सुधा को राज़ी कर लिया। जब इसकी जानकारी ओम जी को हुई तो उन्होंने एतराज़ किया और सुधा को ऐसा करने से रोका। वजह यह थी कि हज़ारों में ख़रीदा प्लॉट अब लाखों का हो गया था। ओम जी लाखों की पूँजी यूँ मुफ़्त में गँवाने के पक्ष में नहीं थे। बस, इसी आपत्ति को लेकर प्रेम शर्मा नाराज़ हो गए। इस हद तक कि आना-जाना, बोलना-चालना सब बंद कर दिया। सदैव के लिए शत्रुता पाल ली। स्वार्थ और लोभ ने बरसों के रिश्ते को धता बता दी। दरअसल, प्रेम शर्मा को इतना क्रोध करने की आवश्यकता नहीं थी। कोई अपनी चीज़ आपको नहीं देना चाहता था तो उसमें बुरा मानने की क्या बात थी! स्वार्थ, संबंध और संवेदना की राह की बाधा बन चुका था।

संध्यारानी का स्वागत

ओम जी की 'संध्यारानी के स्वागत' की आदत चरम पर पहुँचने लगी थी। 'संध्यारानी के स्वागत' का मुहावरा भी ओम जी द्वारा ही गढ़ा गया था। पहले वे जमकर बीयर पीते थे और फिर तीन पैग व्हिस्की। जब पूरी तरह घोड़े पर सवार हो जाते थे तो उन्हें तत्काल खाना चाहिए होता था। सुधा हर तरह का खाना बनाने में माहिर हो चुकी थी। बीच में ओम जी की तबीयत कुछ नासाज़ रही तो आंशिक परहेज़ रहा, पर मुँह की लगी कहाँ छूटती है। बाद में शूटिंग के लिए मुम्बई से बाहर जाते तो सुधा अक्सर साथ जाती थी। उस बार ओम जी एक फिल्म की शूटिंग के सिलसिले में चैन्नई गए हुए थे। सुधा साथ न जा सकी थी। रात को होटल में हृदयाघात हुआ जो अंततः 15 अक्टूबर 1990 को उनकी मृत्यु का कारण बना। ओम शिवपुरी के देहावसान के पश्चात् आर्थिक स्थिति

एक बार ओम शिवपुरी गंभीर रुप से बीमार हुए तो उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए सुधा ने देवी से मन्नत माँगी थी कि यदि ओम स्वस्थ हो जाएँगे तो नंगे पैरों देवी-दर्शन को जाएँगी। मन्नत पूरी हुई। इन्दौर में सुभाषनगर स्थित अपने भाई के मकान से तपती धूप में नंगे पैरों छह किलोमीटर दूर हरसिद्धि मंदिर में सुधा देवी-दर्शन करने गई और अग्नि परीक्षा में खरी उतरीं।

शनैः शनैः कमज़ोर होती गई। बेटी ऋतु हरि वेंकट से विवाह कर अपना जीवन जी रही थी। उसने आँखें, रॉक डांसर, ग्लैमर गर्ल, आर या पार जैसी कुछ फ़िल्मों में काम किया, यद्यपि सिलसिला लम्बा नहीं चला। बेटा विनीत तुलनात्मक रुप से छोटा था। बाद में वह सहायक निर्देशक के रूप में काम करने लगा। क्षीण होती आर्थिक स्थिति में जीतू जी (जितेन्द्र) और उनकी बेटी एकता कपूर सुधा की सहायता के लिए आगे आए और प्रसिद्ध धारावाहिक 'क्योंकि सास भी कभी बहू थी' में 'बा' का किरदार निभाने का ऑफ़र दिया 'बा' के सशक्त अभिनय को ख़ूब ख्याति मिली। उल्लेखनीय है कि जीतू जी और ओम जी के संबंध मधुर थे। मांडू (मांडव-धार-म.प्र.) में किनारा की शूटिंग के समय उनकी नज़दीकियाँ देखने का अवसर मिला था। 'किनारा' का गुलज़ार लिखित गीत 'मेरी आवाज़ ही पहचान है' बहुत लोकप्रिय हुआ था। फ़िल्म में जितेन्द्र और हेमा मालिनी लीड रोल में थे। मेघना फ़िल्म्स के तले प्राणलाल मेहता फ़िल्म को बना रहे थे। धर्मेंद्र भी अतिथि कलाकार के रुप से एक छोटी-सी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले थे। हालांकि धर्मेंद्र मांडू नहीं आए थे। वैसे रियल लाइफ में भी जितेन्द्र-धर्मेन्द्र आमने-सामने आ गए थे। फ़िल्म में ओम जी का क़िरदार हेमा जी के मामा का था।

'सास भी कभी बहू थी' से कुछ पहले से सुधा के पैरों में तकलीफ़ रहने लगी थी जो क्रमशः बढ़ती गई। बाद में कुछ अन्य बीमारियों ने भी घेर लिया। वर्ष 2014 में हृदयाघात भी हुआ। 15 दिसम्बर 2014 को मेरी आख़िरी मुलाक़ात उसके आवास 402, पंच अमृत, ऑफ यारी रोड, अंधेरी (वेस्ट) पर हुई थी। हालत देख काँप उठा था। मल्टीआर्गन फेल्युअर के कारण तमाम गतिविधियाँ थम गई थी। जीवन व्हील चेअर पर सिमट गया था। बोले हुए शब्द मुश्किल से समझ में आते थे! बेटा विनीत दो-तीन सेवकों की सहायता से सुधा की देखभाल कर रहा था। आख़िर हिम्मत जवाब दे गई। 20 मई 2015 को सुधा ने अंतिम साँस ली। सूचना पाकर दुःखी हुआ हालाँकि दुखद अंत की आशंका पिछली भेंट के समय ही हो गई थी। बचपन से लेकर अंत तक की अनेक यादें स्मृति पटल पर तैर गईं। उस ख़ालीपन का भरना मुश्किल है।

खारा तो नहीं हुआ तुम्हारी आत्मा का जल?

श्याम सुंदर दुबे

धरती से पानी खींचकर हम फ़सलें लहलहाएँ और धरती के घावों को सहलाएँ तक न। अंधाधुंध जंगल काटते जाएँ और जंगल के हरेपन का अपनी दीवारों पर पेंट करते रहे तो बादलों को कौन न्योता देगा? बेतहाशा तरीक़े से जनसंख्या का विस्फोट होता रहे, धरती का चेहरा और गंदा होता जाए तो पानी के बिना धरती की मलिनता कौन पोंछेगा? पहले अपने भीतर की सफ़ाई ज़रूरी है। मन को तीर्थ बनाओ!

सृष्टि

जल की सत्ता रहस्यमय है... वह जीवन जैसा है... बहुत कुछ ढँका-मुंदा... कुछ-कुछ झलक-सी मारता... कुछ-कुछ व्यक्त और बहुत कुछ अव्यक्त। अव्यक्त में अपनी ओर खींचने का भाव होता है। गहरे शांत नीले जल के ऊँचे तट पर खड़े व्यक्ति को कभी-कभी ऐसा लगने लगता है कि यह अनंत अतल जलराशि उसे अपनी ओर आमंत्रित कर रही है। जल एक अनिवार आकर्षण अपने भीतर पालता है। यह आकर्षण जल के जीवंत होने का प्रमाण है। जल एक वृत्त है सृष्टि के अनादि चक्र का प्रणेता समुद्र से वाष्प, वाष्प से बादल, बादल से बूँद बनने की अनेक छटाएँ, अनेक रूप, अनेक स्वाद, अनेक रंग हैं- जल चक्र के आघूर्णपन में उसकी प्रत्येक बूँद में द्युति है। बूँद समुद्र बनने की समुत्सुकता पालती है। जल की इस चक्रीयता में ही जीवन निहित है। जीवन और मृत्यु एक सीधी रेखा के दो छोर नहीं हैं। भारतीय संदर्भ में जन्म-मरण एक चक्र है। निरंतर नया होने का पुनः पुनः उज्जीवित हो उठने का। जल सबको नया करता है, पुराने को बहाता गलाता हुआ, रंगरूप और गंधहीन करता हुआ, निचारता हुआ, विरेचित करता हुआ, पुराने को नया, नये को नयी आभा और नया रूप देता हुआ। जल पुनरुत्पादन का आधार है। संसार में जो कुछ फिर से नया हो रहा है, उग रहा है, जीवंत हो रहा है, हराभरा हो रहा है, वह सब जल की क्षमता का ही प्रदर्शन है। पौधा सूखने लगे तो उसे जल दो, वह पनपने लगेगा। धरती की कोख में पड़ा-पड़ा बीज जीवन के अनंत सपने सिरजता है, जब वह जल के संपर्क में आता है, तब उसके भीतर जीवन के स्पंदनों का विस्फोट होता है। वह उद्‌भिज बन जाता है। जल का गीलापन पाकर बीज के सपने वृक्ष बनने लगते हैं। वृक्ष का

हरापन, वृक्ष के खिलखिलाते फूल, वृक्ष के फल सबमें जल विद्यमान है। जल, धरती की स्वाद क्षमता को पुनरुत्पादित करता है। धरती की गंध को महक देता है। वह धरती की उर्वरता में अपने जीवन का प्रकाश परावर्तित करता है। 'आपो ज्योति रसोमृतम्' जल जीवन ज्योति बनकर फल का रस, फूल का पराग और प्राणों की उजास बनता है। जल की लय से ही जीवन की लय उद्‌भूत है। जल की सहजता लयात्मक है। जल का संपूर्ण जिस लय को सिरजता है, वही सृष्टि की सर्जना का आदि नाद है।

जल सृष्टि की प्रीतिकर प्रतीति है। वैज्ञानिकों को मंगल ग्रह पर वाष्प की एक बूँद दिखी और वे जीवन के समुल्लास से भर उठे। पृथ्वी से अलहदा ग्रह पर कोई और अपनी जीवनलीला रचे हुए है। वह कोई अत्यंत सूक्ष्म कीटाणु-बैक्टीरिया हो सकता है। वह बैक्टीरिया जीवन की लीला का संवाहक है। जल से सृष्टि का सूत्रपात अव्यक्त सिसृक्षा का संदर्भ है। इसका रूपक क्षीरसागर में विष्णु-नाभि से कमल और कमल पर आसीन सृष्टि रचयिता ब्रह्मा के चतुर्मुखी रुप में प्रकट होता है। यह रूपक जल और वाष्प से समायोजित उर्वरता भरा प्रसंग भी है। नाद और बिन्दु का सहपादन हो सृष्टि को रूपाथित करता है। वाक् सुक्त में वाक् का उद्‌भव समुद्र से माना गया है। वाक् उद्‌घोषित करती है 'मम् योनिरप्स्वन्तः समुद्रे' मेरा जन्म समुद्र के उस अंतल हृदय से हुआ है, जिसके अंतर्गर्भ में अनंत अग्नियों का ताप समाया हुआ है। इस ताप से उत्सर्जित ऊर्जामय वाष्प ही रसवर्षी जीवन जगाने वाले मेघ के रूप में जन्म लेती है। समुद्र और मेघ का यह नाभिनाल संबंध वाणी के अद्‌भुत प्रकाश में प्रकट होता है। मेघ में निहित स्वर और प्रकाश की विद्युत ऊर्जा ही उसे बार-बार जीवन रचने की सामर्थ्य देती है।

जल को तोड़कर ही विद्युत प्राप्त की जाती है। विशाल टर्बाइनों में चक्कर काटता जल और उत्तुंग ऊँचाइयों से निष्पादित प्रपात का अतुल आवेश ही ऊर्जा का अनंत स्रोत है। यह ऊर्जा विद्युत बनकर जीवन में नानाविध रूपों रंगों की उजास प्रकट करती रहती है। जल सृष्टि का प्राण भी है और जल चैतन्य की सौन्दर्य आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का नित नवीन उपादान भी है। इसलिए रसवर्षी मेघ समुद्र की जिस गहराई में उठते हैं- सृजन व्याकुलता को समेटे धरती को रसा बनाने का संकल्प लेकर, उसी गहराई के मूलाधार से योगी का अनहद नाद उठता है। उसी से कवि-कलाकार अपनी सृजनात्मक आकांक्षा को आकार देते हैं। जल और वाक् के अंतराल में प्रकाश को पारदर्शिता है तो इनके भीतर गाढ़े रंगों का उद्‌भुत

हमारे पास पानी के कितने रंग हैं। कितने संदर्भ हैं। कितने संबंध हैं। कितने संवाद हैं। कितने पनघट हैं। कितने घाट हैं। कितनी यात्राएँ हैं। कितनी स्मृतियाँ हैं। कितने अनुष्ठान हैं। कितने पर्व हैं। कितने प्रसंग हैं। कितने उत्सव हैं। कितने अर्घ्य हैं। कितने आचमन हैं। कितने तीर्थ हैं। कितने विसर्जन हैं। कितने चितंन हैं। कितने संन्यास हैं। कितने योग हैं। कितने संयोग हैं। कितने राग हैं। कितने कलकल हैं। कितने कलरव हैं। कितने स्नान हैं। कितने दीपदान हैं। कितने फूलों से भरी झबरिया हैं। कितने मंत्रों से भरी डगरिया हैं। कितनी धाराएँ हैं। कितनी सहस्त्रधाराएँ हैं। कितनी पद-यात्राएँ हैं। कितनी परिक्रमाएँ हैं। कितनी मानताएँ हैं। कितनी कथाएँ हैं। कितनी गाथाएँ हैं। कितनी कंदुक-क्रीड़ाएँ हैं। कितने वंशीरव हैं। कितने मिलन के लिए आतुर त्रेता हैं। कितने प्रतीक्षारत द्वापर हैं। कितने वरुण, जलधार बनकर बहते रहे। कितने इंद्रधनुष सपनों में रंग भरते हुए आकाश होते रहे।

- श्रीराम परिहार

समुच्चय भी है। अथाह नीलिमा का अनंत भंडार कुहेलिकाओं का सघन मायाजाल भी है। जल जब रचना करता है, तब द्रवीभूत प्रकाश है, और जब सबको लय करता है तब तरल अंधकार है। (कामायिनी में प्रसाद ने बहते तरल अंधकार का रूपक महाप्रलय की दारुण रात्रि के रूप में प्रस्तुत किया है।) जल के भीतर ही जीवन समाया रहता है। इसलिए प्रलय के तरल निविड़ अंधकार में जीवन को जागृत करने वाली महाशक्तियाँ उल्का लेकर जीवन का प्रभात खोजती रहती हैं। जल है तो जीवन की लय, प्रलय में भी शेष है। जल से जीवन का जो सामाजिक संबंध है, वह अव्ययी भाव का है। जल में पुनर्नवता प्रदान करने का चैतन्य विद्यमान है।

एक वैदिक ऋचा में जल की अधिदेवियों से प्रणति की गई है। इस प्रार्थना में जल की पुनरुज्जीवन प्रदान करने की क्षमता का उल्लेख है। ''तुम सब मेरे लिए कल्याणकारी बनी रहो, हमें ऊर्जा दो जो तुम्हारा सबसे प्रियतम रस है, उसकी सहभागी बनाओ, जैसे माँ अपने आप निःशेष रूप से बच्चे को अपना रस देती है वैसे ही तुम हमें रस प्रदान करो, वह रस पाकर हम पर्याप्तता, सफलता और कुछ अतिशय को प्राप्त करें। हमें उस रस के मर्म तक पहुँचाओ, जिससे तुम हमें नये रूप में जन सको, हमें नया जन्म दे सको।'' लोकजीवन में जल को जीवन प्रदायिनी मानकर उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। शिशु को जन्म देने वाली माँ, घर-गृहस्थी के कार्यों में तभी संलग्न होती है, जब यह कुआँ पूजन कर लेती है। सद्यः प्रसूता तमाम तीमारदारियों के बीच अनेक उत्सवी क्षणों से घिरी रहती है। उसने घर के कोनों को किलकारियों से अनुगुंजित किया है। उसने वंश वल्लरी में एक और कोंपल विकसित की है यह सृष्टि का सृजन उत्सव है, जो माँ केंद्रित है। माता ने भी इस सृजन यज्ञ के बाद नया जन्म प्राप्त किया है। प्रत्येक सृजन, सर्जनहार को नया जन्म देता है। सृजन के पूर्व वह जैसा था, सृजन के बाद वह वैसा नहीं बचता। नये सृजन के लिए इस क्रियाशीलता से जुड़ना है। वह सबसे पहले जल का पूजन करेगी। जल के प्रति कृतज्ञता का ज्ञापन जल की सृजन चेतना का सम्मान है। सद्यः प्रसूता निकरी।'' आकाश में बादल उमड़-घुमड़ रहे हैं और नीचे बहुरानी कुआँ से पानी भरने जा रही है। बादल स्वयं अपनी रसधार से सद्यः प्रसूता का कलश भरना चाहते हैं किंतु गाँव का कुआँ ही सच्चा रसस्रोत है। इस कुएँ पर न जाने कितनी पनिहारिनों ने अपने हास-परिहास भरे उत्फुल्ल क्षण और अपने आँसुओं से प्लावित बूँद-बूँद दुःख-दर्द पनघट पर से कुएँ के अंतरंग में उड़ेले हैं। कुएँ ने न जाने कितने उलहनों ईर्ष्या-द्वेष भरे कितने अनुभवों को अपनी लहरों में समेटा है। उसने न जाने कितनी निराशाओं को हितुरते जल से पोंछा है, धोया मिटाया है।

कुआँ एक चहल-पहल है। कुआँ रस-कुंड है। इसी कुएँ का पूजन कर रही नयी माँ कुएँ से मंगलाशीष माँगती है। अपने स्तन की पहली दूध-धार कुएँ में छोड़ती है। यह कहती हुई यह मेरा दूध मेरा नहीं। मेरे अभी-अभी जन्में बच्चे का भी नहीं। यह तो तुमसे रस लेकर ही मेरी दुग्ध वाहिनियों ने इस अमृत को पाया है। 'इदन्नमम इदं विश्वाय'... यह तुम लो। मेरे इस दूध से पूरा गाँव परिपुष्ट हो। मेरे मातृत्व का अनुपान तुम्हारे जल में निहित औषधि तत्व को हज़ार पुटी बनाये। तुम्हें मेरा यह स्तन सदैव सजल बनाये रखे। इस क्षण यह सद्यः

पानी के पास स्मृति थी
पानी जितना गहरा
स्मृति उतनी ही साफ़
हवा के पंख जितना
पानी को सहलाते
पानी पर ठहरी लहर
उतना ही साफ़ करती थी
स्मृतियों के जाले
पानी
अपने झरने का
सबसे आदिम गीत
अकेले में ही गाता

- वीरु सोनकर

मातृत्व धरती की धारणा का प्रतीक बन जाता है। धरती की शिराओं में प्रवाहित रस रुप जल संपूर्ण सृष्टि के लिए दूध-धार हो जाता है। 'दूधो नहाओं पूतों फलों' का स्वस्तिवाचन कुएँ की जगत का कण-कण करता है। उपभोक्तावाद ने धरती की रस वाहिनियों को सुखाया है तो माताओं को छातियों के दूध को भी सुखा डाला है। शिशु की भूख काँच और प्लास्टिक की बोतलों में क़ैद हुई। कुओं की धमनियाँ बूँद-बूँद निमुड़ गईं। कुएँ भर गये हैं भाराक्रांत अंधकारों से उनकी ममताभरी आँखों के आँसू पता नहीं कहाँ चले गये? शायद तलहटी में से पपड़ी बन गये हैं।

हिलनी-मिलनी के तीर्थ पनघट चकनाचूर हो गये हैं। गाँव भर के दु:ख-दर्द को समेटने वाले रस्सा-डोल कबाड़ख़ानों में पहुँच गये हैं। कुओं और बावड़ियों में भांय-भांय गूँज रही है। वे डरावने हो गए हैं। उनमें ब्रह्म राक्षस डेरा डाले बैठे हैं। तालाबों की तरल छाती पर काम्पलेक्सेज खड़े हो गये हैं। जहाँ हवा तालाब को रोमांचित करती हुई उनकी सतह पर लहर पटोरे बिछा देती थी अब वहाँ भीड़ की रेलमपेल है। एक तालाब अपनी अंत:शिराओं से बीस कुओं को सींचता है। तालाब सूखा तो उसके आसपास के उपजीव्य कुएँ भी सूख गये। धरती के सजल मूलों पर आदमी आघात कर रहा है। सजल मूल न रहें तो नदियाँ भी सूख जाती हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने इस सजलमूल की चर्चा की है। ''सजलमूल जिन सरितन्ह नाहीं। बरस गये पुनि जांहि सुखाहीं।'' धरती के सजल मूल निरंतर नष्ट हो रहे हैं।

जल की धारण क्षमता और धैर्य की असीमता के कारण ही धरती, धरती है। धरती के पास जल है तो वह सृष्टि धारण करने में समर्थ है। जिन ग्रहों पर जल नहीं है वे ग्रह कंकाल रह गये हैं... धरती से उलंगते स्रोतों में निरंतर कमी आ रही है। पानी पाताल को पलायन कर रहा है। फ्रिज के अंत: प्रकोष्ठ में संग्रहीत पानी की बोतलें कीमत माँगती हैं। इस देश में बहुत पहले दूध नहीं बिकता था, मट्ठा नहीं बिकता था। ये सब गोरस थे... धरती के रस। रस बेचा नहीं जाता। अब दूध और मट्ठा तो छोड़ दीजिये पानी को कीमत लग रही है फिर भी यह आश्वस्ति नहीं है कि रुपये देकर जो एक बोतल पानी खरीदा जा रहा है, वह स्वच्छ पानी ही है। (पानी जब बिकने लगता है, तब धरती का हिया डोलने लगता है वह अलग तरह का भूकंप है, इसके झटके आदमी के पेट में लगते हैं।) जल से धरती की कोख हरी-भरी है। जल जोड़ता जो है, जल रसता जो है, सृष्टि और व्यष्टि के बिखरे कणों को यहीं धरती की ममता का अंतरंग अनुभव है। ईंट-ईंट जुड़कर मकान बनता है किंतु ईंट जिस गारे से जुड़ती है वह गारा जल की सरलता से हो गीला होता है। कठोर चीज़ों को आपस में जोड़ने का काम जल ही करता है। चित्र बनने की सामर्थ्य रंग जल में विलयित होकर हो पाते हैं। जितना जो कुछ सृष्टि में सुंदर है वह जल की ही माया है। राहगीर से दो शब्द बोलने-बतियाने का अवसर राहगीर की प्यास को बुझाने वाले जल के अपनापे में ही छिपा है।

राहगीर अँजुरी में ढरते पानी को नहीं पीता, वह जल ढारने की नेहदुलार भरी दृष्टि को पीता है। उनकी गहनतम आत्मीयता को वह अपने भीतर उड़ेलता है। जल, जब मुक्त होता है, तब उसकी पवित्रता से पृथ्वी का मुख दमक उठता है जल को व्यापार की

जल में ज्योति, ज्योति में जल

जल की सर्वत्र व्याप्ति की चर्चा कबीर ने अपनी कविता में की है। कबीर लोक कवि हैं,, इसलिए उनकी उक्तियाँ लोकोक्तियों की तरह प्रचलित हैं। 'जल में उत्पत्ति जल में वास जल में नलिनी तोर विनासा' यह कथन लोक में प्रचलित उस धारणा को व्यक्त करता है, जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति सृष्टि का विकास और सृष्टि का सोप जल में ही होता है। जीवन के आर-पार जल की स्थिति को प्रकट करते हुए कहा गया है 'भीतर जल है। बाहर जल है ऊपर-नीचे पानी।' इसी अर्थ में जल जीवन का पर्याय भी है। 'रहिमन पानी राखिये बिनु पानी सब सून' में यही अर्थ-व्याप्ति है। मैथुनी सृष्टि का आदि मूल वीर्य है- अनेक क्षेत्रों में लोक बोलियाँ वीर्य को पानी नाम से ही प्रकट करती हैं। वेद में यह स्पष्ट है कि जल से ज्योति स्पष्ट होती है। जल न केवल जीवन है, बल्कि यह जीवन को भी प्रकाशित करता है। आज भी जल के तीव्र निपात से विद्युत का उत्पादन जल की शक्ति का अनुनाद है। जल ही अन्न है, ज्योति अन्नाद है, जल में ज्योति प्रविष्ठित है और ज्योति में जल। 'आपो वा अन्नम्। ज्योति रन्नादम्। अप्सु ज्योति: प्रतिष्ठितम्। ज्योतिष्पाप: प्रतिष्ठिता।' अपनी इन्हीं शक्तियों के कारण जल संसार का रचयिता, पालक और संहारक है। हिन्दी प्रदेशों में पृथ्वी को 'जलनी' कहा जाता है। इसका अर्थ जल से निकाली गई, जो सदैव जल में रहती है- जल द्वारा पालित पोषित है- वही जलनी है।

शर्तों में बांधोगे तो वह बिखरेगा-सड़ेगा और अपनी पत्थरकाट शक्ति से मारकाट के प्रसंग उपस्थित करेगा। मनुष्य के क्षुद्र स्वार्थ जल के प्रवाह को रोकते हैं। नहर का पानी केवल मेरे खेत को ही सींचे। मेरे घर के पास का हैंडपंप केवल मेरे लिए पानी दे। मेरे प्रांत की नदी केवल मेरे प्रांत की है। इसके जल पर केवल मायके का अधिकार है। अनेक प्रांतों को पार कर वह अपनी ससुराल जाती है। तो ससुराल के मार्ग और ससुरालवालों के लिए वह कुछ नहीं। नदी तो कन्या है-बहू है-माँ है-मायके और ससुराल में सब जगह एक-सी। पानी जैसा सहज है, वैसी ही अंतरंगता वह आदमी से चाहता है। मनुष्य के मन की निर्मलता से पानी निर्मलता मिलकर ही पानी के प्रवाह को सतत और सर्वहितकारी बनाती है। जब मन गंगा नीर हो जाता है तभी हरि कबीर के पीछे-पीछे चलते हैं, ''कबिरा मन निर्मल भया जैसे गंगा-नीर। पीछे-पीछे हरि फिरैं कहत कबीर-कबीर।''

तालाबों को, कुओं को, बावड़ियों को स्वार्थ के यक्ष से मुक्त करो। इन सबके तटों पर यह यक्ष केवल क़ब्ज़ा तो नहीं जमाये है, इनको पाटता हुआ प्यासे युधिष्ठिर के सामने अनेक प्रश्न उछाल रहा है। मेरे युग के युधिष्ठिर को उसके प्रश्नों के उत्तर देना है। सत्य का साबका जल के दुर्दांत पहरेदारों से पड़ा है। दूर से पानी लाने में नयी बहू के पाँव दर्द दे रहे हैं। वह कहती है ''मों सों पनिया भरो न जाय अंगना में कुंअला खुदवाय मोरे राजा।'' राजा आँगन में कुआँ बना लेते हैं। किन्तु उन लाखों बहुओं का क्या होगा? जो दसियों किलोमीटर छनछनाती रेत पर यात्रा करते हुए दो पानी जुगाड़ पाती हैं। उन नवयुवकों का क्या होगा? जिनके गाँव निरपनियाँ हैं। इस बिना पर ये कुँवारे बैठे हैं कि कोई माँ-बाप इस निरपनिया गाँव में अपनी बेटी नहीं ब्याहना चाहता है।

उन नौनिहालों का क्या होगा जो पोखर में सिमटे सड़े जल से अपना गला तर कर रहे हैं, और वैतरणी के किनारे तक पहुँच रहे हैं। शहर का भूगर्भीय जल भीतर बहते विषों की चपेट में है। तो फिर कौन पी रहा है-निर्मल नीर? यक्ष प्रश्नों का उत्तर दे रहा है, मेरे समय का एक कवि। इन उत्तरों पर ज़रा ग़ौर फरमाएँ- ''पानी पियो तो याद करो प्यास इमाम हुसैन की। पानी पियो तो शुक्रिया अदा करो कुम्हारों का। पानी पियो तो सोचो काटी तो नहीं तुमने दूसरों की नहरें। किसी की प्यास के रास्ते में तुम यज़दी तो नहीं। ...पानी पियो तो सोचो। खारा तो नहीं हुआ तुम्हारी आत्मा का जल।''

भाव से अहोभाव की यात्रा

अरविन्द ओझा

कला में सौंदर्य बोध

प्रेम के किसी गहन पल में विराट अपने मौन स्पंदन से जिस संप्रेषण शक्ति की रचना करता है वही कला है। प्रेम जहाँ ज्ञान की अभिव्यक्ति है और कला जो प्रेम रुपी आनंद का सहज सौंदर्य है। भारतीय कला मनीषा ने भाव की इस विशेष स्थिति को ही सौंदर्यबोध का केंद्रीय आधार माना है।

कला रूपांतरण की एक सतत प्रक्रिया है, शक्ति का एक निरंतर प्रवाह जिसकी निरंतरता इस जीवन का समष्टिगत आधार है। आदि काल से ही मनुष्य अपने चेतन बोध में कला को एक सापेक्ष अवधारणा की तरह बरतता आया है जिसके एक छोर पर जीवन की अबाध गति रही है तो दूसरे छोर पर प्रकृति से संघर्ष करता स्वयं मनुष्य। लेकिन संघर्ष की इस अनवरत प्रक्रिया में मनुष्य ने जिन श्रेष्ठतर संस्कारों को अपनी दृष्टि, कर्म, विचार और भाव में अनुभव करते हुए एकत्रित किये वे ही अंततः इस जीवन का सौंदर्यबोध कहलाये। प्रकृति का अनंत सौंदर्य मनुष्य मन को सहज ही आकर्षित करता रहा है। अनुभूति के तल पर मनुष्य के चित्त में विराट के प्रति एक जन्मजात रागभाव होता है जो उसके चित्त में एक सहज वृत्ति की तरह क्रियाशील रहता है। यद् पिण्डे तद ब्रह्माण्डे– के इस ऋषि उद्घोष का एक अर्थ यह भी माना जा सकता है की पिण्ड या कण में भी पूरा ब्रह्माण्ड है अतः कोई भी कण स्वयं में छोटा नहीं होता। सभी बड़े है। आकाश बड़ा है। हवाएँ बड़ी है। धरती, जल और अग्नि वस्तुतः भूमा तत्व के ही विस्तार हैं। इसी भूमा तत्व को ऋषि ने अमृत रूपी रस कहा है– यो वै भूमा तदमृतम। प्रकृति के असंख्य रूपाकारों से अभिभूत मनुष्य का मन सौंदर्य की इस व्यापकता को जब अपनी बुद्धि से संधान नहीं कर पाता तो अपनी इस अनुभूति को ''अपूर्व'' कहकर जैसे स्तब्ध रह जाता है। ये अगम्य विराट रूपाकार किसी न किसी रूप में मानवीय अवचेतन मन का लगातार नवनवोन्मेष करते रहे हैं और मनुष्य के अंदर उपस्थित उसके कलाकार भाव को किसी कल्पना के सहारे कला के आंतरिक सौंदर्य से अभिन्न रुप से जोड़ते भी रहे है। सार्वभौम चेतना का एक आंतरिक गुण मानते हुए प्लेटो ने भी सौंदर्य को सृष्टि का मूल तत्व कहा और इसका निरंतर संधान को ही तत्व द्रष्टा का परम लक्ष्य माना। प्लोटिनस और आगस्टीन जैसे पाश्चात्य दार्शनिक विचारकों ने सौंदर्य को ईश्वरीय तत्व के रूप में स्वीकार करते हुए उसे परम सौंदर्य से तादात्म्य और अनुराग के विषय के रुप में स्वीकार्य किया। विराट ही अपने अनंत स्वरूप में आनंद का परम सौंदर्य बनता है। सौंदर्य का यही रूप भारतीय कला, साहित्य और काव्यशास्त्र में रस, चारुत्व, रमणीयता, शोभा, कान्ति और चमत्कार जैसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता रहा है।

वैसे तो सौंदर्य बोध का अभिप्राय सामान्यतः कला अनुभव की प्रक्रिया से जुड़ा है लेकिन यदि हम इसे ठीक से विचारें तो यह प्रश्न उठता है कि अनुभव प्रक्रिया में संवेग का वह कौन सा क्रियात्मक रूप है जो हमारे विचार और भाव पर पड़ रहे कला प्रभावों को एक सहज सौन्दर्यानुभूति

में बदल देता है? मसलन वेदांत दर्शन के किसी अद्वैत सूत्र को पढ़ते हुए, कालिदास या भवभूति के नाटकों में जीवन के नैतिक आदर्शों को छूते हुए, प्लेटो के सिम्पोज़ियम में सौंदर्य और प्रेम के नए अर्थ प्रभावों को ग्रहण करते हुए, लियोनार्डो या माइकल एंजेलो के प्रसिद्ध भित्तिचित्रों में रंग संयोजन की बारीक़ियाँ देखते हुए, बीथोवेन और मोजार्ट की सिम्फनीज़ में सूक्ष्म स्वर संरचना को सुनते हुए, कंडेनस्की और पिकासो के चित्र प्रयोगों में अमूर्तन को समझते हुए, जॉन बुनवेल और तारकोवस्की की सिनेमा का कोई कलात्मक दृश्य देखते हुए या फिर अजंता-एलोरा की अपूर्व कला अभिव्यक्तियों के एकांतिक रस को महसूस करते हुए, खजुराहो और कोणार्क के मंदिर प्रस्तरों पर कामसूत्र के जीवंत शिल्प विन्यास का साक्षात्कार करते हुए, भीमबेटका और बराबर की आदिम गुफा कला की जड़ों में मनुष्य की आर्द्र पुकार सुनते हुए या पारम्परिक और आदिवासी कलाओं की तांत्रिक अभिव्यक्तियों में ईश्वर, प्रकृति और मनुष्य के साहचर्य के गुणसूत्र ढूँढते हुए दरअसल हम अपनी दृष्टि के सौंदर्य संधान में कला आस्वादन के किस रुप को आत्मसात करते हैं? यह प्रश्न किसी भी सजग दर्शक या श्रोता का एक स्वाभाविक मानसिक तल हो सकता है।

महाकवि कालिदास कुमारसम्भव में कहते हैं- 'यदुच्येत पार्वति पापश्तये, न रुप मित्य व्यभिचारि तदध्य।' अर्थात हे पार्वती, सच बात तो यह है कि रूप सौंदर्य पाप वृत्ति को बढ़ाने के लिये नहीं बल्कि पापों के कल्मष को धोकर मन को रसपूर्ण, सूक्ष्म, चैतन्यपूर्ण और आनंदमय बनाने के लिए होता है। हालाँकि इस संसार के ग़ैरअनुपातिक रूप विन्यास को देखने की कलात्मक दृष्टियाँ विश्व की अनेक संस्कृतियों में लगातार विकसित होती रहीं लेकिन सौंदर्य अनुभव का जो उदात्त शिखर भारतीय कला मनीषा ने अपनी अर्थवत्ता में छुआ उसका अन्यत्र उदाहरण मिलना मुश्किल है। भारतीय कला के प्राण तत्व दर्शन में निहित रहे हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में ब्रह्म तत्व को इस सृष्टि का मूल तत्व माना गया है जो स्वयं ही सत्य है, वही ज्ञान भी और वही अनंत भी- सत्यम ज्ञानम अनंतम ब्रह्म। भारतीय कला दृष्टि ने सौंदर्य को महज़

छवि: प्रवीण दीक्षित

विराट ही अपने अनंत स्वरूप में आनंद का परम सौंदर्य बनता है।

भाव से अहोभाव की यह यात्रा कला में सौंदर्य बोध का भारतीय विहंगम स्वरुप है। कला की लोक दृष्टि जीवन को स्वीकार करने के उस भाव में निहित है जहाँ ज्ञान रुपी राम को भी एक सरस और भाव से भरे रसायन रुप में लोक चेतना तक आना पड़ता है। यही लोक दृष्टि का सौंदर्य है। भरतमुनि सौंदर्यबोध के कलात्मक सूत्र में भाव और रस तत्वों की प्रमुखता को समझाते हुए नाट्यशास्त्र में कहते हैं– ''जहाँ तक हाथ जाता है वहाँ तक दृष्टि जाती है। जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक मन। जहाँ तक मन, वहाँ तक भाव और जहाँ तक भाव, वहाँ तक रस।''

चित्र: अशोक भौमिक

एक वस्तुगत गुण या भावनाओं का असीम विस्तार ही नहीं माना वरन इसे प्रकृति के ज्ञान तत्व के रुप में भी प्रतिष्ठित किया। दरअसल त्रिगुणात्मक प्रकृति का विस्तार ही कला का वह त्रिआयामी आकाश है जहाँ भौतिक तल पर कला मन का रंजन करती हुई इन्द्रियों तक पहुँचने वाले आनंद के क्षणिक स्वरूप को प्रकट करती है वहीं मानसिक तल पर कला मन को पवित्र करने वाली बनती है और अपने प्रबोधन स्वरूप में विचार की उत्पत्ति करती है लेकिन अपने आध्यात्मिक तल पर कला शुद्धतम ज्ञान है जो प्रकृति की मूल तत्व और अभिव्यक्ति का आदि कारण मानी जाती रही है।

सामान्यत: जीवन में सौंदर्य दो तलों पर प्रकट होता है। एक है प्रकृति और दूसरी है कला। लेकिन यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि जब प्रकृति के अंदर पहले से ही सौंदर्य अपने व्यापक शुद्ध रुप में विद्यमान है तो फिर उसके निम्नतर स्वरूप को कला के विभिन्न माध्यमों में ढूँढने और उन्हें गढ़ने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी? इस महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर इस एक अर्थ में हो सकता है कि प्रकृति अपनी गतिशीलता में सौंदर्य को संरक्षित रखने में असमर्थ होती है वही कला अभिव्यक्ति में सौंदर्य अपने अनुकरण या निम्नतर गुणवत्ता में होने के बावजूद भी अंतत: एक स्थायी भाव को प्राप्त करता है। मोंद्रियाँ ने लिखा है– संस्कृति के पूरे इतिहास में कला ने यह दिखाया है कि 'शाश्वत सौंदर्य' आकृति के किसी विशेष आयाम से नहीं बनता बल्कि इसके नैसर्गिक संबंधों के गतिशील लय से बनता है। प्रकृति के अंदर उपस्थित क्षणभंगुर बिम्बों के स्थायी भाव के सन्दर्भ में कीट्स अपनी 'ओड ऑन ए ग्रेसियस उर्न' कविता में कहते हैं कि केवल कला ही स्थायी है, प्रकृति की शेष सारी चीज़ें नश्वर हैं। महाकवि माघ प्रकृति की गतिशीलता में सौंदर्य की नवीनता को स्थापित करते हुए कहते हैं– क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपेति तदेव रुपं रमणीयताया:। यद्यपि कैंडेनस्की ने कला में अध्यात्म की चर्चा की है लेकिन वैज्ञानिक युग के परमाणु विघटन से उभरती अपनी अमूर्त सांगीतिक छवियों को एक वैकल्पिक सर्जना के रूप में कहीं न कहीं स्थायित्व और आपसी सम्बद्धता के आंतरिक भाव से ही जोड़े रखा।

विश्व के अनेक विचारकों, कवियों और कलाकारों द्वारा कला और सौंदर्य पर बेहद गहरा दार्शनिक चिंतन हुआ है लेकिन पाश्चात्य चिंतकों ने अपनी मौलिक और वैज्ञानिक दृष्टि में सौंदर्य बोध को सर्वप्रथम दो वृहद् आयामों में देखने की पहल की। सौंदर्य की सत्ता वस्तुनिष्ठ है या व्यक्तिनिष्ठ? पश्चिम का वस्तुगत या रूपगत दर्शन इस बात पर ज़ोर देता

है कि सौंदर्य वस्तु का गुण है और वह रूप आकार में ही निहित है। हर्बर्ट ने कभी कहा था- सौंदर्य अपने अतिरिक्त किसी अन्य तत्व का प्रतीक नहीं है। आत्मवादी दर्शन सौंदर्य को चेतना का प्रतीति रुप मानता है। प्लेटो कहते हैं कि व्यक्ति का सौंदर्य विश्व सौंदर्य का ही अंग होता है। शारीरिक सौंदर्य के ऊपर चेतना के सौंदर्य की सत्ता है जिसका नियंत्रण नियम, मर्यादा और नैतिक सौंदर्य से होता है। वहीं नव भाववादी चिंतकों ने मनुष्य के अंदर काम और इच्छा को सौंदर्य का प्रमुख तत्व माना है।

भारतीय वांग्मय में कलागत सौंदर्य का विवेचन काव्यशास्त्र को केंद्र में रखकर ही किया गया है। भारतीय कला और काव्य सौन्दर्य का आधार रस सिद्धांत और 'ध्वनि सिद्धांत' है जो क्रमशः भरतमुनि और आनंदवर्धन द्वारा प्रतिपादित किये गए भारतीय 'रस-मीमांसा' के अनुसार परम सुख अथवा रसानुभूति और ब्रह्मास्वाद अथवा आनंद सब कला के ही आधार तत्व हैं। भरत मुनि ने रस की अवधारणा को आत्मा और रहस्य से अलग कर सबसे पहले मनुष्य के मन और उसके विभिन्न मनोदशा से जोड़ा।

सौंदर्य रूप का एक सहज और बोधगम्य गुण है जो ऊर्जा रूप में हरेक जीव में विद्यमान होता है। इसका सृजन कला और साहित्य में वह सतत् प्रक्रिया के रूप में मान्य है जिसमें विचार, भाव, चेतना और प्रकृति के अवयवों के बीच एक संतुलन प्राप्ति का लक्ष्य होता है। प्रकृति की मूल अवस्था अव्यक्त है, रूप रहित है, शाश्वत है और रस पूर्ण है और यही सृजन के समस्त रूपों का आदिम कारण और स्रोत भी है। तैत्तिरीय उपनिषद् का यह महावाक्य - रसो वै सः - उस निराकार परम तत्व के रसरूप होने की ही उद्घोषणा है जो अपने स्वरूप में आकाश सदृश्य व्याप्त, सतत प्रवाहमान, क्रियाशील, संगीतपूर्ण और अनंत कलास्वरूप है। यह रस ही समस्त भावों में अन्तर्निहित आनंद का परम स्रोत है और कला रूपी ज्ञान का अंतिम सार भी। वेद का तर्क है कि यदि आत्मा स्वयं रस और आनंद नहीं है तो उसे बाहर से आकर कोई रस और आनंद नहीं दे सकता इसलिए आकाश, पृथ्वी, अग्नि और अंतरिक्ष रस से भरपूर और प्रकट रूप हैं। रस शुद्ध अनुभव को इंगित करता है, जो अनुभवजन्य भावना से अलग है। रस सिद्धांत एक पवित्र परंपरा का हिस्सा है। आनंद कुमार स्वामी कहते हैं कि यह विषय के चुनाव पर निर्भर करता है जिसमें झोपड़ी एक गिरिजाघर के रुप में रस पैदा कर सकती है। सौंदर्य बोध की यह आत्यंतिक दृष्टि अपने शास्त्रीय तल से होती हुई जब लोक तक की यात्रा करती है तो जैसे पूरे समष्टि का भाव ही उसके चेतना का एकमात्र केंद्र बन जाता है और फिर अपने सौंदर्य संधान में भारतीय कला मनीषा कण-कण में विराट के श्रेष्ठतर रूपों को देखते हुए एक प्रेमपूर्ण हृदय से पूरी प्रकृति को धन्यवाद देने की मुद्रा में अहोभाव से भर जाती है।

भाव से अहोभाव की यह यात्रा कला में सौंदर्य बोध का भारतीय विहंगम स्वरूप है। कला की लोक दृष्टि जीवन को स्वीकार करने के उस भाव में निहित है जहाँ ज्ञान रूपी राम को भी एक सरस और भाव से भरे रसायन रूप में लोक चेतना तक आना पड़ता है। यही लोक दृष्टि का सौंदर्य है। भरत मुनि सौंदर्यबोध के कलात्मक सूत्र में भाव और रस तत्वों की प्रमुखता को समझाते हुए नाट्यशास्त्र में कहते हैं- ''जहाँ तक हाथ जाता है वहाँ तक दृष्टि जाती है। जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक मन। जहाँ तक मन, वहाँ तक भाव और जहाँ तक भाव, वहाँ तक रस।''

दरअसल त्रिगुणात्मक प्रकृति का विस्तार ही कला का वह त्रिआयामी आकाश है जहाँ भौतिक तल पर कला मन का रंजन करती हुई इन्द्रियों तक पहुँचने वाले आनंद के क्षणिक स्वरुप को प्रकट करती है। मानसिक तल पर कला मन को पवित्र करने वाली बनती है और अपने प्रबोधन स्वरूप में विचार की उत्पत्ति करती है। लेकिन अपने आध्यात्मिक तल पर कला शुद्धतम ज्ञान है जो प्रकृति की मूल तत्व और अभिव्यक्ति का आदि कारण मानी जाती रही है।

मुलाक़ात

विरासत का संस्कार मेरी पूँजी

यतीन्द्र मिश्र से अनुलता राज नायर का संवाद

सांस्कृतिक परिसरों में यतीन्द्र मिश्र की उपस्थिति एक ऐसे बहुआयामी, संवेदनशील, गुणी और नवाचारी अध्येता लेखक की है जिनकी हर कृति का बिरादरी ने स्वागत किया है। भारत सरकार का स्वर्ण कमल पुरस्कार पाने वाली पुस्तक 'लता सुर गाथा' हो या फिर नृत्यांगना सोनल मानसिंग, गान-विदुषी गिरिजा देवी या शायर सिने पटकथाकार गुलज़ार के जीवन और सृजन के पहलुओं को समेटती दीगर किताबें हों, एक गंभीर शोधवृत्ति के साथ यतीन्द्र ने अपने काम की सुंदर परिणति दी। वे एक साथ कई परियोजनाओं को साधने की दक्षता रखते हैं। यतीन्द्र के इस कृति-व्यक्तित्व के प्रति नेह, मान और जिज्ञासा से भरकर रेडियो लेखिका तथा समीक्षक अनुलता राज नायर ने संवाद किया।

अनुलता राज नायर: अगर मैं किसी रेल के सफ़र में आपसे मिलूँ और आपका परिचय पूछूँ तो क्या कहेंगे?

यतीन्द्र मिश्र: मैं जो हूँ, वही कहूँगा- हिन्दी का एक लेखक हूँ। एक रचनाकार के बतर्ज़ मैंने कविताओं से अपनी शुरुआत की, जिसे आज भी लिखता हूँ, मगर उसका संचयन काफ़ी वर्षों से नहीं छपवाया है। मेरी पहचान जिनसे बनती है, उसमें कई चीज़ें शामिल हैं। मेरे लिए अपने शहर का नागरिक होना भाता है और क़स्बाई या शहरी जीवन की छोटी-छोटी बातें मुझे लुभाती हैं। अयोध्या से हूँ, यह बात अपनी पहचान के लिए भी मुझे जागरुक बनाती है। फिर रचना का जीवन कई अन्य माध्यमों में घूमते हुए मुझे घेरता है, जिसमें शास्त्रीय और फ़िल्म संगीत, सिनेमा की दुनिया के साथ परम्परा धर्म, अध्यात्म के चिन्तन की बातें शामिल हैं। मेरे लिए मित्रताओं का अपना आकर्षण है और मेरे दोस्त मुझे कई रूपों में प्रभावित करते हैं। मैं अक्सर अपने आत्मीय लोगों से जुड़ते या संवाद करते हुए इस बात के लिए प्रयासरत रहता हूँ कि वे मुझे एक सच्चे और सहृदय मित्र के रुप में जानें, मेरी उपस्थिति एक ज़िम्मेदार नागरिक और भले इंसान की हो। इन्हीं बातों को मन में रखते हुए अपनी रचनाओं से भी जूझता हूँ। मैं नहीं जानता कितना बेहतर कर पाया हूँ, मगर कोशिश यही है कि मेरा नाम आने पर सामने वाले के चेहरे पर सहज ही मुस्कान आए।

रही बात कि 'मेरा परिचय ख़त्म नहीं होगा और मंज़िल आ जायेगी'- ऐसा नहीं है, यह आप जैसे दोस्त की भलमनसाहत है, जो मेरे बारे में इस तरह सोचती हैं।

लताजी के जीवन और संघर्षों, संगीत की तालीम, किसी गीत के बनने की प्रक्रिया, संगीत की बारीक़ी और सिनेमा की दुनिया के ढेरों अन्य मामले– सभी पर बात करना या शोध करना ज़रूरी लगा। इसके बग़ैर एक ऐसी किताब तैयार होती, जो नाकाफ़ी होती... और शायद वह लता जी की कला के साथ पूरी तरह न्याय न कर पाती। यह सब करने में एक लम्बे समय की दरकार थी, जो सौभाग्य से लता जी के सहयोग के चलते सम्भव हुई।

लंबी वार्ताओं के बाद आप किसी शख़्सियत पर किताब लिखते हैं, जैसे 'लता: सुर-गाथा' पाँच साल की बातचीत के बाद मुक़म्मल हुई। आपको बेसब्री नहीं होती?

– आपने 'लता: सुर-गाथा' के हवाले से यह सवाल किया है, तो उसी किताब के आधार पर अपनी बात रखना चाहूँगा। मुझे लगता है कि जब आप किसी के जीवन पर आधिकारिक रूप से कुछ लिखना और टिप्पणी करना चाहते हैं, तो उसे सामने से जान लेने का प्रयत्न करना चाहिए। मैं इस मामले में भाग्यशाली रहा कि मैंने अब तक जिन कला विभूतियों पर किताब लिखी, उन सभी से व्यक्तिगत परिचय था और सभी ने मुझे मेरी किताब के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध कराया। उस्ताद बिस्मिल्ला ख़ाँ, गिरिजा देवी, सोनल मानसिंह और लता जी... सभी ने बड़े उत्साह और वत्सल भाव से मुझे इस लायक़ समझा कि अपने जीवन के पन्नों को मेरे सामने खोल सके। फिर, मुझे यह भी लगता है कि ऐसे बड़े लोगों पर कुछ लिखने से पहले आपकी तैयारी बहुत वृहद स्तर पर होनी चाहिए। आप भी जानती हैं कि इंटरनेट और सोशल मीडिया के युग में किसी भी विषय के बारे में जानकारी एकत्र करना या विवरण जुटाना, अब बड़ी बात नहीं रही। कम्प्यूटर पर एक क्लिक से तमाम सर्च इंजन उस विषय के बारे में पर्याप्त जानकारी और सन्दर्भ मुहैया करा देते हैं। यह अलग बात है कि उसमें भी अमुक विषय के बारे में दी गयी सूचनाओं की प्रमाणिकता जाँचना हर एक ज़िम्मेदार लेखक, पाठक का कर्त्तव्य है।

मेरा तरीक़ा थोड़ा अलग है, मैं यदि किसी के जीवन पर काम कर रहा हूँ, तो उससे सीधे मुख़ातिब होना पसन्द करता हूँ। मेरे लिए प्राईमरी सोर्स से जानकारियाँ जुटाना ज़्यादा भरोसेमन्द लगता है। फिर यह आपकी ज़िम्मेदारी है कि जिस व्यक्ति के बारे में आप लिखकर समाज के आगे रखना चाहते हैं, उस लेखन के प्रति आपकी दृष्टि क्या है? आप किस तरह जीवन, संघर्ष, व्यक्तिगत सूचनाओं, अन्तर्विरोधों, विवादों और उपलब्धियों को दर्ज करना चाहते हैं? एक लता जी के उदाहरण से ही यदि बात कहूँ, तो मेरे सामने यह बड़ी चुनौती थी कि उनके बारे में ऐसा क्या है, जो एक आम भारतवासी नहीं जानता? ज़ाहिर है कि उनकी प्रशंसक तीन पीढ़ियाँ रही हैं। तब उनके जीवन और संघर्षों, संगीत की तालीम, किसी गीत के बनने की प्रक्रिया, संगीत की बारीक़ी और सिनेमा की दुनिया के ढेरों अन्य मामले– सभी पर बात करना या शोध करना ज़रूरी लगा। इसके बग़ैर एक ऐसी किताब तैयार होती, जो नाकाफ़ी होती... और शायद वह लता जी की कला के साथ पूरी तरह न्याय न कर पाती। यह सब करने में एक लम्बे समय की दरकार थी, जो सौभाग्य से लता जी के सहयोग के चलते सम्भव हुई। आप बताएँ, जिस महिला का सांगीतिक कॅरियर ही आठ दशकों के विशाल समय अन्तराल में फैला हुआ है, उसे चन्द घण्टों या कुछ दिनों में नहीं निपटाया जा सकता था। मेरे लिए उनसे बात करना और उनके संगीत को समझते हुए हिन्दी फ़िल्म संगीत के इतिहास को खँगालना ज़्यादा महत्वपूर्ण था, इसलिए मैंने इस किताब को लिखने में समय लिया। वैसे भी मैं किसी भी किताब के प्रॉसेस को बड़े क़रीने से इंज्वॉय करता हूँ। मुझे किसी भी तरह की बेसब्री नहीं होती, बल्कि मेरी अपनी तबीयत में ही धीरज शामिल है। बिना धैर्य की साधना के कोई भी काम ठीक ढंग से सम्भव नहीं, ऐसा मुझे लगता है।

इतनी बड़ी किताब की बात चली तो एक जिज्ञासा और हो रही है। लिखते हुए क्या किसी की मदद लेते हैं, जो लिखा एडिट करे या कम्पाइल करता रहे? क्लेरिकल हेल्प? क्यूँकि इतना विस्तार है इस किताब में कि एक इंसान समेट ले ऐसा सम्भव नहीं लगता। सुपर ह्यूमन हैं आप?

– लिखते हुए तो मदद नहीं लेता, मगर अपने नोट्स बनाकर उसे टाईप कराते समय मेरे सहयोगी, अश्वनी शुक्ल उसे कम्प्यूटर पर उतारते हैं, जिसके प्रिंटआउट पर मेरे द्वारा कुछ सुधार करने के बाद उसे दुरुस्त करते हैं। वे मेरे साथ पिछले लगभग पन्द्रह सालों से हैं और मेरे काम को गम्भीरता से समझते हैं। एडिट करने का काम मैं ख़ुद करता हूँ, मुझे किसी दूसरे के द्वारा सम्पादित कराना पसन्द नहीं। मेरे लिखे के पहले पाठक

भी मेरे घर में मौजूद हैं, जिसमें मेरी बुआ अपर्णा, मेरी दोनों बहनें मंजरी और शुभांगी उसे पढ़कर अपनी उन्मुक्त राय देती हैं। कई दफ़ा उनके सुझाए हुए कुछ बिन्दुओं को अपने ढंग से ठीक करता हूँ। लता जी वाली किताब में चूँकि संगीत की पारिभाषिक शब्दावली और फ़िल्म म्युज़िक की डिटेल्स भी काफ़ी आयी थीं, तो किताब के प्रकाशन से पूर्व मैंने शास्त्रीय गायिका शुभा मुद्गल जी से अनुरोध किया था कि वे इसे पढ़कर सांगीतिक अंशों पर अपनी टिप्पणियाँ दें, जिससे अगर कोई ग़लती निकलती है, तो उसे ठीक किया जा सके। ऐसा करने से मेरे लेखन में रचनात्मक सुधार भी हुए, जिसका ज़िक्र मैंने 'लता: सुर-गाथा' की भूमिका में किया भी है। फ़िल्मों के सन्दर्भों को जाँचने के लिए अपने मित्रों- युनुस ख़ान, गौरी याडवडकर और नरेन्द्र सैनी को भी पटकथा पहले पढ़ने के लिए भेजी थी।

एक ख़ुलासा पाठकों से भी करता हूँ, जिसकी आप गवाह भी हैं कि मेरी गुलज़ार साहब पर आने वाली पुस्तक के ढेरों अंशों को तो छपने जाने से पहले अनुलता आपने भी पढ़ा है, जिसे मैंने अपने शिल्प और वाक्य-विन्यास को देखने के लिए आपको भेजा था। इस पर आपने कुछ ज़रुरी सुझाव भी दिए हैं। (हँसते हुए)

अद्भुत अनुभव था गुलज़ार साहब की किताब के अंशों को पढ़ना, बल्कि रोमांचक... शायद यही सही शब्द होगा क्यूँकि एक-एक सफ़हा पढ़ते हुए मेरे रोंगटे खड़े होते रहे।

- कभी सोचकर ऐसा नहीं किया है। मंच संचालन, पॉडकॉस्ट या साहित्यिक समारोहों में मौजूद रहना मेरे हिसाब से आपके रचनात्मक कर्म का विस्तार जैसा तो नहीं होता। जब आपका लिखना-पढ़ना प्रबुद्ध समाज या आयोजकों को पसन्द आता है, तो ऐसे काम मिलते रहते हैं... और यह सिर्फ़ मेरे साथ ही नहीं है, आजकल युवतम से युवतम रचनाकार बहुत सारे मंचों पर अपनी बात कहते हुए पाए जाते हैं। व्यक्तिगत तौर पर कविता लिखना ही सबसे ज़्यादा प्रिय है, वह आपके एकान्त को भी दूसरे तरीकों से भरता है और लेखकीय सन्तुष्टि देता है। हाँ, इस बात से ज़रुर सहमत हूँ कि हाल के वर्षों में कलाकारों से लम्बी बातचीत के आधार पर उनके जीवन और कलाकर्म पर लेखन किया है। यह मुझे व्यक्तिगत तौर पर भाता है, क्योंकि उनकी रचनात्मक यात्रा से जो कौतूहल, जिज्ञासाएँ और प्रश्न मन में उपजते हैं, उनका समाधान पाने और उसे रसिक समाज के सामने लाने में सन्तुष्टि मिलती है।

यतीन्द्र के साथ लेखिका अनुलता

हर सुंदर रचनात्मक कार्य समय लेता है, तपस्या माँगता है। आपने अपनी उम्र के हिसाब से बहुत-बहुत ज़्यादा काम किया है। बहुत सारी अद्भुत किताबें, लगातार छपती समीक्षाएँ, लेख, मंचीय गतिविधियाँ, पॉडकास्ट्स और भी न जाने कितना कुछ ...। क्या फिर भी कुछ छूटा हुआ लगता है? कुछ ऐसा, जो अभी न कर पाए हों?

- यह आपको लगता है कि मैंने ज़्यादा काम किए हैं, मगर रचनाकार के तौर पर हर एक व्यक्ति अपने प्रश्न, संशयों और रचनात्मक विचार में हर पल संघर्षरत रहता है। प्रकाशित कृतियों के आधार पर यह धारणा अक्सर लोग बनाते हैं कि फ़लाँ की इतनी किताबें प्रकाशित हैं, तो उसका काम ज़्यादा हुआ सा लगता है। पर मैं सच बताऊँ मैंने अपने जीवन में ढेरों ऐसे बड़े लोगों को देखा है, जिनकी छपी हुई चीज़ों से कहीं अधिक सामग्री उनके अध्ययन कक्ष में बिखरी पड़ी है। मेरे गुरु और पारिवारिक मित्र कुँवर नारायण जी का जितना साहित्य प्रकाशित हुआ, उसके अनुपात में कहीं ज्यादा उन्होंने लिखकर

छोड़ रखा था, जिसे हम सब के कई बार मनुहार करने के बाद भी वे प्रकाशित करवाने के लिए तनिक भी उत्सुक नहीं होते थे। यह बात मुझे बड़ी लगती है और प्रेरणास्पद भी। सवाल के अन्त में आपने पूछा है कुछ ऐसा जो अभी कर न पाए हों, तो अभी तो मैं अपने रचनात्मक जीवन का आरम्भ ही मानता हूँ, जीवन व्यापक है, उसके अनुभव और भी विपुल... न जाने भविष्य में क्या लिखना हो सके, उसका अनुमान लगाने में फ़िलहाल ख़ुद को समर्थ नहीं पाता हूँ।

आपका राग-रागिनियों और गायक-गायिकाओं से जुड़ाव, उनके प्रति प्रेम और सम्मान, संगीत की ख़ासी समझ...। आपने संगीत की शिक्षा ली है क्या?

– मेरे परिवार में संगीत का माहौल रहा, तो अपनी दादी स्व. राजकुमारी विमला देवी के कण्ठ से निकलने वाले गीतों, भजनों, सोहर, होली गीत और दादरा आदि सुनकर मेरी किशोरावस्था बीती है। तो यह कह सकता हूँ कि कानों में पड़े हुए संगीत और घर के संगीतप्रेमी माहौल ने मुझे संगीत के प्रति उत्सुक बनाया। एक समय शास्त्रीय संगीत सीखने का चस्का लगा था, मैं शायद इण्टरमीडिएट में रहा होऊँगा, तब अयोध्या के ही एक संगीतज्ञ जो वॉयलिन वादक थे, डब्ल्यू. आर. चिश्ती जी, उनसे सीखना शुरु किया था। मुझे याद है कि मैंने राग भूपाली, यमन, भैरव और वृन्दावनी सारंग शुरुआती स्तर पर सीखा था, जिसकी बन्दिशें वे रियाज़ करवाते थे। यह तालीम कुछेक वर्ष चली, मगर अपनी आगे की पढ़ाई और संगीत को समय न दे पाने के कारण वह शौक़ परवान नहीं चढ़ सका।

आप यात्राएँ करते हैं? मेरा मतलब घुमक्कड़ी शायद आपको पसंद है। यात्राओं की सार्थकता आपके लिए क्या रही है?

– हर इंसान यात्राएँ तो करता ही है। मैंने भी की हैं, मगर ज़्यादातर साहित्य और कलाओं की गतिविधि के कारण या फिर किसी कलाकार से बातचीत करने और उसे सुनने जाने के लिए उन शहरों की यात्राएँ ज़रूर होती रही हैं। वैसे मैं आपको अपना सीक्रेट बताता हूँ, मुझे यात्रा बहुत प्रिय नहीं है। घर और अयोध्या में रहना ही भाता है। किसी शहर की बड़े चाव से बनी यात्रा के बाद जब वहाँ जाने का समय नज़दीक आता है, तो निरुत्साहित होता हूँ कि कहाँ इस जंजाल में फँस गया? अक्सर लगता है कि यह यात्रा न करनी होती या किसी कारण स्थगित हो जाती, तो कितना बढ़िया रहता।

आप अयोध्या के राज परिवार से हैं। इस विरासत के बारे में बताईए।

– आप अपने जन्म का स्थान और परिवार नहीं चुन सकते, वह ईश्वरीय है कि आपको कहाँ जन्म लेना है। मैं ख़ुद को ख़ुशक़िस्मत मानता हूँ कि ऐसे परिवार में मेरा जन्म हुआ, जहाँ पढ़े-लिखे लोगों और कलाकारों के सम्मान की परम्परा रही। हमें बेहद समावेशी वातावरण में शिक्षित किया गया, जिसे अपने जीवन का एक सुन्दर अध्याय मानता हूँ। राजपरिवार में जन्मने के कारण इस बात की भी दृष्टि मिली कि सिर्फ़ साधन सम्पन्न घराने में जन्म लेने से कुछ नहीं होता है, बल्कि आपकी परवरिश में समाज के साथ जुड़ने, आदर देने और सहकार की कैसी भावना रही है, वो जीवन संघर्ष में काम आती है। अपने परिवार की जो सबसे अनूठी बात मुझे लगती है, वह यह कि हमारा बड़ा कुनबा एक संयुक्त परिवार है, जहाँ हर एक रिश्ते की अपनी सुन्दरता और उसके सामंजस्य की रीति उपस्थित है। ढेरों रिश्तों में पड़कर और उनके प्रति उत्तरदायित्व को देखते हुए यह मुझे रचनात्मक रुप से भी समृद्ध बनाती है। हर एक इंसान को उसके हुनर के प्रति सम्मान देने, हर आम-ओ-ख़ास के प्रति समदर्शी बने रहने और दूसरे व्यक्ति की निजता और गरिमा का सम्मान करने का जो संस्कार विरासत में मिला, वह मेरी पूँजी है। उसी पर चलने का प्रयास करता हूँ, यह अलग बात है कि कह नहीं सकता, उसमें कितना सफल रहा हूँ।

ज्ञान और स्मृति को लेकर आप मुझे करिश्मा लगते हैं। बातचीत के दौरान क़िस्से पे क़िस्सा निकलता जाता है। ...कोई अभ्यास? ईश्वर और बड़ों का आशीर्वाद या शंखपुष्पी खाई है बचपन में?

– (हँसते हुए) ईश्वर की बड़ी दया है कि अभी इतनी उम्र नहीं हुई कि शंखपुष्पी खाकर स्मरण शक्ति बढ़ाई जाए। मैंने आपको बताया है कि हमारा पारिवारिक वातावरण ऐसा रहा है, जहाँ संगीत, साहित्य, कलाओं के सहकार के चलते ढेरों लोगों से मिलने का व्यक्तिगत अनुभव हुआ, कुछ परिवार परम्परा की कहानियाँ, इतिहास से छनकर मिलती रहीं, कुछ अपनी भी जिज्ञासा रही होगी... ऐसे में बहुत सारे किरदारों की बातें, नसीहतें, संस्मरण और श्रेष्ठ जनों का सान्निध्य आशीर्वाद के तौर पर मिलता रहा। उसी में से कभी कुछ याद आ जाता है, आप लोगों से शेयर कर लेता हूँ। बाक़ी कोई ऐसा अभ्यास, या जादू नहीं है, जिससे

जब आप किसी के जीवन पर आधिकारिक रुप से कुछ लिखना और टिप्पणी करना चाहते हैं, तो उसे सामने से जान लेने का प्रयत्न करना चाहिए। मैं इस मामले में भाग्यशाली रहा कि मैंने अब तक जिन कला विभूतियों पर किताब लिखी, उन सभी से व्यक्तिगत परिचय था और सभी ने मुझे मेरी किताब के लिए पर्याप्त समय दिया। लताजी ने भी...

कोई मनगढ़ंत बात कही जाए। इतना अवश्य कहूँगा कि जीवन के छोटे-छोटे अनुभव और सामान्य व्यवहार की चीज़ों में भी दिलचस्पी और आदर ने मेरे अनुभव और रचनात्मक कर्म को कई परतों में सघन ढंग से बुना है, जिसके रंग मुझे भाते हैं... जिसकी ख़ुशबू आत्मीय जनों से बाँटने का मन होता है।

आप सन्तुलित और शान्त लगते हैं। कुछ व्यथित करता है, तो कैसे रिएक्ट करते हैं?

– यह वाक़ई मेरी तबीयत में शामिल रहा कि मैं शान्त व सन्तुलित हूँ। इसका एक कारण मेरा परिवार और उससे मिला हुआ माहौल है। मुझे हमेशा लगता है कि हर व्यक्ति दूसरे से भिन्न स्वभाव और रुचियों का होता है, जिससे सामंजस्य बिठाकर और उसका आदर करते हुए ही मित्रता या रिश्ता निभाया जा सकता है। इसीलिए अपनी तरफ़ से भरसक सन्तुलित रहता हूँ। फिर भी एक इंसान हूँ, तो कई बार गुस्सा भी आता है, मगर वह देर तक टिकता नहीं। मैंने हमेशा अपनी नाराज़गी या असहमति को किसी से रिश्ता निभाने की कसौटी नहीं बनाई। कई दफ़ा परिस्थितियाँ और सामने वाली की मन:स्थिति ठीक नहीं होती, तो बातें बिगड़ने के स्तर तक जा सकती हैं। इसीलिए कोशिश करनी चाहिए कि आपसी प्रेम और सहमति का विवेक बना रहे। अक्सर बहुत सारी चीज़ें व्यथित करती हैं– लोगों का व्यवहार, सोशल मीडिया पर होने वाले विवाद, किसी का व्यक्तिगत रोष या अपनी ही कोई ऐसी मन:स्थिति, जब मन खिन्न रहता है। ऐसे में भरसक उससे दूर होने और निरपेक्ष रहने का प्रयास करता हूँ। यह शायद आपने भी देखा होगा कि मैं तमाम सारी बातों, विरोध और लोगों की व्यक्तिगत नुक्ताचीनी, जो कई दफ़ा दूसरे कारणों से मेरी तरफ मुड़ी रहती है, उसे नज़रअन्दाज करता हूँ, पलटकर जवाब नहीं देता और कोशिश रहती है कि बेवजह ही किसी व्यर्थ की बहस में नहीं पड़ूँ, जो मेरे मानसिक स्वास्थ्य को तो बिगाड़े ही, मेरा रचनात्मक समय भी बेकार में ख़राब करे। दुनिया में इतने अच्छे लोग, इतनी शानदार किताबें और इतने सुन्दर रिश्ते जब मौजूद हैं, तब उसे समय देना, उसके सम्मोहन की ज़द में रहना मुझे अधिक पसन्द है। फ़िज़ूल की चीज़ों में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं।

कोई सपना या मनोकामना है, जो भविष्य में पूरी करना चाहते हों, कोई ड्रीम प्रोजेक्ट?

– ईश्वर का धन्यवाद कि अब तक अपने मन का ही काम किया है, जिसमें सफलता मिली। मैं तेईस बरस का रहा होऊँगा, जब शास्त्रीय गायिका गिरिजा देवी जी पर किताब लिखने की सोची थी और वह साध पूरी हुई। नाईन्थ क्लास में था, जब लता मंगेशकर जी के प्रेम में पड़ा और उसी समय से उनके संगीत का ऐसा दीवाना बनता गया कि कभी सोच भी नहीं सकता था कि वे कभी सामने से मुख़ातिब होंगी, सालों साल मुझसे बातें करेंगी और मैं उन पर किताब लिख पाऊँगा। यह सब सपनों के सच होने की ही बातें हैं... टच वुड!

अभी भी बहुत सारे ऐसे लेखन का मन है, जिनके मोह में बँधा हुआ हूँ। भक्तिकाल की कविता और शास्त्रीय संगीत से उसके सम्बन्ध पर लिखना है। मैं एक ही समय में बहुत सारे कामों में उलझा रहता हूँ। ढेर सारी किताबों को पढ़ना, शास्त्रीय संगीत सुनना और पसन्द की भारतीय और विदेशी फ़िल्में.... इनके अलावा अयोध्या पर सालों से जारी रिसर्च में लगा रहता हूँ, जो यहाँ की संस्कृति और वांग्मय पर एकाग्र है। निश्चित तौर पर यह नहीं कह सकता कि अगला प्रोजेक्ट क्या होगा? जब, जिस चीज़ की प्रेरणा होगी, वह लेखन या अध्ययन अपने आप ख़ुद की राह पकड़ेगा। आपसे तो बस इतनी गुज़ारिश है कि यही दुआ करें कि जो कुछ भी मैं लिखकर अपने पाठकों को देना चाहता हूँ, वह ठीक और मुकम्मल ढंग से, धैर्य और परिश्रम के साथ दुनिया के सामने आ सके।

सुरीला परिवेश

उल्हास तेलंग

संगीत का सीधा सम्बंध किसी भी देश, समाज और उसकी संस्कृति से होता है। सभ्यताएँ विकसित होती हैं तो मानव से मनुष्य बनने की प्रक्रिया में परिवेश के प्रति जागरुकता, शिक्षा, साहित्य तथा कलाओं के प्रति रुझान में बढ़ोतरी होती है। इनकी जड़ें जितनी गहरी होती जाती हैं, समाज में उतने ही अनुपात में संवेदनशीलता और सहिष्णुता के मूल्य भी विकसित होते हैं जिससे उस समाज और क्षेत्र की पहचान भी क़ायम होती जाती है।

वैदिक संस्कृति से पोषित हमारा देश ऋषि-मुनियों का देश कहलाता है जहाँ हज़ारों साल से रोपित उन सांस्कृतिक व आध्यात्मिक मूल्यों की अक्षुण्ण धारा से ओतप्रोत यहाँ का मन अपने परिवेश को जाग्रत व जागरुक रखता है। इन सांस्कृतिक मूल्यों में हमारी शिक्षा व विभिन्न कलाओं के विकास व विस्तार का इतिहास भी अनिवार्य रुप से समाहित रहता है। इन कलाओं में संगीत, जिसमें गायन, वादन व नृत्य सभी शामिल हैं, का स्थान विशेष है। भारतीय संगीत की पृष्ठभूमि व आधार धार्मिक व आध्यात्मिक स्वरुप के रहे हैं। वैदिक ऋचाओं के पठन-पाठन से लेकर देवी-देवताओं की स्तुति उसके अंत:स्थल में रहे हैं। इसी कारण जो संगीत हमारे यहाँ विकसित हुआ है वह अपने आप में बेजोड़ एवं अनूठा है। हमारा सुरों का संसार मनुष्य को बाहर से अन्दर की ओर खींच कर उसे ध्यान और चिंतन की दिशा में प्रेरित करता है। विदेशी आक्रमणों, प्रभावों, मिश्रणों के बावजूद हमारी संगीत परंपराएँ काफ़ी हद तक उसकी मूल आत्मा से बहुत अधिक भटकी नहीं हैं और

छाया: गौरव पाटिल

देश को आज़ादी मिलने के बाद संगीत के प्रचार-प्रसार के लिए सरकार ने काफ़ी-कुछ किया है। इन प्रयासों से संगीत के प्रति निश्चय ही जागरुकता बढ़ी है। लोक-रुचि बढ़ी है। लेकिन जनमानस की विशाल अपेक्षाओं की पूर्ति में मात्र सरकारी प्रयास ही पर्याप्त नहीं हैं। इसके समाधान के लिए ग़ैर-सरकारी स्वयंसेवी संस्थाएँ भी मैदान में उतरी हैं जिन्होंने संगीत को लोकप्रिय बनाने में, उसकी शिक्षा उपलब्ध कराने में अग्रणी भूमिका निभाई है।

उसका स्वरुप काफ़ी हद तक अपरिवर्तित ही है। पिछले डेढ़-सौ, दो-सौ वर्षों में जो संगीत यहाँ फूला-फला है उसे आधुनिक संगीत का सुनहरा काल कहा जा सकता है। इसी अवधि में साधना व शिक्षा के माध्यम से संगीत निरंतर परिष्कृत हुआ है और उसने नई उंचाईयाँ व नये मुकाम क़ायम किये हैं। राजाश्रय तथा संगीत में घरानों की नींव पड़ने के कारण भारत का राग-संगीत विशेष रूप से पुष्ट हुआ है।

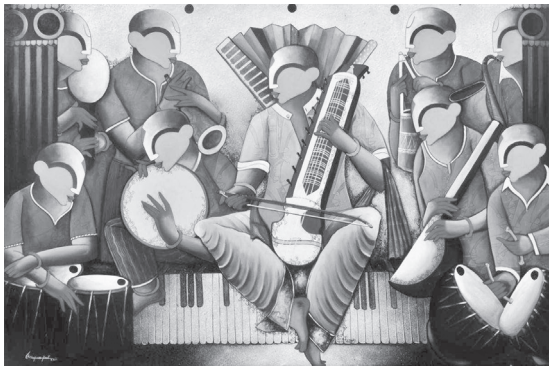

आधुनिक युग में यंत्रों व टेक्नॉलाजी के माध्यम से कलाओं के क्षेत्र में भी क्रांतिकारक बदलाव हुए हैं जिसका पर्याप्त प्रभाव सभी विधाओं पर भी हुआ है। संगीत अब कतिपय उस्तादों और पंडितों की तालीम व पोथियों का मोहताज नहीं रह गया है। अब सब कुछ पारदर्शी है, जो चाहो और जब चाहो सो इंटरनेट पर उपलब्ध है। कोई भी विषय सीखने के एक-से-एक साधन मुहैया हैं। लेकिन इन सब सुविधाओं के बावजूद संगीत सीखने के लिए एक गुरु की, एक शिक्षक की दरकार तो होती ही है। कला ऐसी चीज़ है जिसे मात्र पुस्तकों या यांत्रिक साधनों के द्वारा आत्मसात कर लेना आसान नहीं है। उसकी गहराई में उतरने के लिए और उंचाईयों को छूने के लिए मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है।

देश को आज़ादी मिलने के बाद संगीत के प्रचार-प्रसार के लिए सरकार ने काफ़ी-कुछ किया है। संगीत विद्यालय, विश्वविद्यालय, संगीत नाटक अकादमियाँ इत्यादि अनगिनत संस्थाएँ बनाई गई है जो उसके उन्नयन के लिए प्रयासरत हैं। इन सरकारी प्रयासों से संगीत के प्रति जागरुकता निश्चय ही उल्लेखनीय रुप से बढ़ी है। लोक-रुचि बढ़ी है। लोगों का संगीत के प्रति रुझान बढ़ा है, जानकारी बढ़ी है, उत्सुकता भी बढ़ी है। लेकिन जनमानस की विशाल अपेक्षाओं की पूर्ति में मात्र सरकारी प्रयास ही पर्याप्त नहीं हैं। तो इसके समाधान के लिए गैर-सरकारी स्वयंसेवी संस्थाएँ भी मैदान में उतरी हैं जिन्होंने संगीत को लोकप्रिय बनाने में, उसकी शिक्षा उपलब्ध कराने में अग्रणी भूमिका निभाने का दायित्व अपने कंधों पर लेना आरम्भ कर दिया है।

वैसे तो संगीत को बढ़ावा देने और उसमें उत्कृष्टता लाने के लिए देश में सैंकड़ों नहीं हजारों संस्थाएँ तथा व्यक्ति अपना बहुमूल्य योगदान दे रहे हैं, किन्तु मात्र उदाहरण के लिए मैं दो ऐसी संस्थाओं का उल्लेख कर रहा हूँ जो इस क्षेत्र में अग्रणी हैं। इनका समावेश केवल अपनी बात स्पष्ट करने के लिए कर रहा हूँ।

वर्ष 1977 में आईआईटी दिल्ली के डॉक्टर किरण सेठ ने स्पिक-मैके नाम से एक संस्था बनाई जिसके उद्देश्य संस्था के नाम में ही स्पष्ट हैं। स्पिक-मैके का पूरा विवरण इस प्रकार है- सोसाईटी फॉर प्रमोशन ऑफ इण्डियन क्लासिकल म्युज़िक एंड कल्चर अमन्ग्स्ट यूथ। इस शीर्षक से स्पष्ट है कि उसकी स्थापना भारतीय युवाओं में शास्त्रीय संगीत व संस्कृति के प्रति रुझान उत्पन्न करने के लिए की गई है। इस स्वयं-सेवी तथा गैर-राजनैतिक स्वरुप वाली संस्था का दावा है कि वह अखिल भारतीय स्तर पर एक ऐसा स्वैच्छिक आन्दोलन चला रही है जिसके द्वारा युवाओं में अपनी प्राचीन धरोहरों के प्रति जागरुकता तो उत्पन्न हो ही साथ में हमारे सांस्कृतिक मूल्यों में भी उसकी आस्था जगे और कलाओं को सीखने में उनकी रुचि बढ़े। संस्था ने अपनी गतिविधियों के लिए शास्त्रीय संगीत, नृत्य, लोकगीत, कविता, रंगमंच, पेंटिंग, हस्तकला तथा योगविद्या के क्षेत्रों का चयन किया है जिसके लिए वह निरंतर प्रयत्नशील है। संस्था की रिपोर्ट अनुसार देश के लगभग 1000 शहरों-कस्बों में उसके द्वारा 1500 स्थानीय संस्थाओं के सहयोग से प्रतिवर्ष 5000 कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है जिसमें युवाओं की सक्रिय भागीदारी होती है। अब तक अपनी निष्काम सेवा के माध्यम से स्पिक-मैके ने लगभग 30 लाख विद्यार्थियों व युवाओं को इन कार्यक्रमों के साथ संलग्न किया है। यह आँकड़े यकीनन उत्साहवर्धक हैं। इतने बड़े पैमाने पर युवाओं को इन रचनात्मक गतिविधियों के साथ जोड़ना बहुत उल्लेखनीय और तारीफ़ के काबिल है।

दिल्ली से ऐसी ही एक पहल डॉ. मुकेश गर्ग द्वारा भी की गई है। मुकेश गर्ग जी हिन्दी के प्राध्यापक हैं, हिन्दी के राष्ट्रीय स्तर के नामी अख़बारों में पत्रकारिता कर चुके हैं तथा 'संगीत' मासिक, हाथरस के परिवार से संबंधित हैं। कलाकारों को संगठित करने और उन्हें आपस में जोड़ने के उद्देश्य से गर्ग जी द्वारा 'संगीत-संकल्प' संस्था की स्थापना की गई और राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करते हुए उत्तर-दक्षिण के अनेक राज्यों में इस की शाखाएँ खोलने का वृहद कार्य उनके द्वारा

किया गया है। अपनी लगन, वाणी की मिठास, सेन्स ऑफ ह्युमर और कठोर परिश्रम के द्वारा उन्होंने सैकड़ों कलाकारों को संगीत-संकल्प के साथ जोड़ा है। इस संस्था द्वारा संगीत की अनगिनत सभाएँ आयोजित की जा रही हैं तथा एक राज्य और शाखा के कलाकारों को प्रोत्साहित कर दूसरे राज्यों में निरंतर भेजने की परंपरा क़ायम हुई है। यह एक नियमित गतिविधि है जो नेशनल इंटीग्रेशन का भी नायाब नमूना है। संगीत-संकल्प के माध्यम से कलाकारों तथा श्रोताओं को संगीत का भरपूर आस्वाद मिला है।

संगीत के प्रचार-प्रसार को लेकर एक बड़े रचनात्मक अभियान पर 45 बरस पहले सक्रिय हुई 'स्पिक-मैके' के योगदान को भला कैसे बुलाया जा सकता है! इसी तारतम्य में 'संगीत संकल्प' की पहल और हाथरस से प्रकाशित मासिक संगीत पत्रिका 'संगीत' की सांस्कृतिक भूमिका भी महत्वपूर्ण है।

उद्देश्य एक होते हुए भी स्पिक-मैके और संगीत-संकल्प की अप्रोच में मूलभूत अंतर है। स्पिक-मैके के आयोजन व गतिविधियों के केन्द्र में मुख्यत: छात्र हैं। वहाँ मंच के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने का प्रयोजन है। इसके लिए स्पिक-मैके व्दारा देश के मूर्धन्य संगीतकारों को अनुबंधित कर उन्हें विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं में भेजा जाता है जहाँ गायन-वादन के लेक्चर-कम-डेमोंस्ट्रशन आयोजित किये जाते हैं एवं विद्यार्थियों की शंकाओं का समाधान किया जाता है। उन्हें संगीत की बारीकियों से अवगत कराया जाता है ताकि वे उसमें और गहराई के साथ रुचि ले सकें। इस प्रकार उन्हें एक प्रारंभिक दीक्षा दी जाती है। इसमें दो राय नहीं कि ऐसे आयोजनों से विद्यार्थियों की जिज्ञासा जाग्रत होती है तथा वे कला व संस्कृति के प्रति गहराई के साथ आकृष्ट होते हैं। तकनीकी व तांत्रिकी विषयों के छात्रों का इस प्रकार धरोहरों की ओर मुड़ने और कलाओं में सक्रिय रुचि लेने से उनमें मानवीय मूल्यों की अधिक पैठ होने की उम्मीद की जा सकती है।

दूसरी ओर, संगीत-संकल्प की अप्रोच कलाकार और संगीत प्रदर्शन केन्दित है। इसके आयोजनों में संगीत की महफ़िलों सा वातावरण होता हैं और श्रोताओं को अनेक प्रतिभावान कलाकारों को सुनने-समझने का अवसर मिलता है। इन महफ़िलों में कई ख्यातिप्राप्त वरिष्ठ संगीतज्ञ तो शिरकत करते ही हैं साथ में उदीयमान कलाकारों को भी भरपूर अवसर मिल जाते हैं, विशेषकर उनको जिनकी साधना तप चुकी है किन्तु उन्हे अपनी कला निखारने के लिए समुचित मंच नहीं मिला है। उल्लेखनीय है कि संगीत-संकल्प से जुड़े अनेक कलाकारों ने अखिल भारतीय स्तर पर आगे चलकर स्वयं को स्थापित किया है। संगीत-संकल्प की सभाएँ बड़ी संख्या में आयोजित की जाती हैं जिसमें भारी संख्या में श्रोतागण भी संगीत का आनंद उठाते हैं। इन सभाओं में स्थानीय कलाकारों को भी प्रदर्शन के पर्याप्त अवसर दिये जाते हैं। एक और विशेष बात है कि इसके सदस्य गण बिना किसी मानधन की अपेक्षा के इन संगीत सभाओं में शिरकत करते हैं। एक कलाकार सम्मानपूर्वक दूसरे कलाकार के निमंत्रण पर वहाँ जाकर हाज़िरी लगाता है तो स्वयं भी अपने गृहनगर में अन्य स्थान के कलाकार को आमंत्रित कर उसकी कला का रसास्वादन करता है। यह परस्पर प्रेम और सहानुभूति का सिलसिला अबाध चलता रहता है। इस प्रकार संगीत-संकल्प की छतरी के नीचे बड़ी संख्या में कलाकारों की एक कम्युनिटी का निर्माण हुआ है जो संगीत और उसके साधकों को समर्थन देता है और उसकी हौसला अफ़ज़ाई भी करता है।

स्पष्ट है कि इन दोनों तरीकों से संगीत को लाभ तो हो ही रहा है। इससे लाभान्वित होने वालों में कलाकार, साधक, विद्यार्थी, संगतकार, श्रोतागण सभी शामिल हैं। संगीत को उंचाई देने वाला एक तीसरा माध्यम टी वी चैनल्स भी हैं जो एक लंबी अवधि से सारेगामा, लिटिल चैंपियन्स इत्यादि लोकप्रिय कार्यक्रमों के ज़रिए देश-विदेश से संगीत के टैलेन्टेड बच्चों की खोज कर उन्हें मंच उपलब्ध करा रहे हैं। हालाँकि इन चैनल्स के उद्देश्य वाणिज्यिक एव व्यापारिक स्वरुप के हैं और इन कार्यक्रमों के माध्यम से वे धन की भरपूर उगाही भी कर रहे हैं किन्तु जो एंड-रिजल्ट है वह संगीत के लिए शुभ है और बच्चों के लिए लाभकारी भी। ये चैनल्स देश के विभिन्न अंचलों में जाकर प्रतिभाओं की खोज करते हैं और फिर उन्हें बॉलीवुड के ग्लैमरस वातावरण में सुविधा उपलब्ध कराते हैं तथा आगे अवसर उपलब्ध कराने का वादा भी करते हैं। इन कार्यक्रमों के ज़रिए हिन्दुस्तान के कोने-कोने में और गाँव-कसबों में भी कैसे-कैसे प्रतिभावान बच्चे हैं यह सारी दुनिया की जानकारी में आ जा रहा है। ये माध्यम भी स्वयंसेवी हैं और उनके उद्देश्यों की ओर थोड़ी अनदेखी करें तो वो भी संगीत की भरपूर सेवा कर रहे हैं। कुल मिलाकर परिदृश्य सकारात्मक है और संगीत के उज्जवल भविष्य की ओर इंगित करता है।

उस्ताद ने शागिर्द को अपना 'तबला' दे दिया

स्वरांगी साने

तबले में अपनी मधुरता के लिए पूरब घराना जाना जाता है, उस मधुर घराने के मीठे उस्ताद थे उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब जो अपने एक शिष्य से इतना प्यार करते थे कि उसे अपना बेटा ही मानने लगे थे, इतना कि एक बार अपने परिवारजनों से रुठकर बोरिया-बिस्तर उठाकर उस शिष्य रुपी बेटे के घर आ गए थे। सगा बेटा मनाने आया, पर वे नहीं गए, तब इस मानस बेटे ने ही किसी तरह समझाया और दो दिन बाद वे अपने घर लौटे थे। अपनी उम्र के 107 सालों तक जब तक उस्ताद साहब ज़िंदा थे मानस पुत्र उनकी सेवा करता रहा...इंदौर के पलासिया स्थित डॉक्टर शेख़ हातिम अस्पताल में उस्ताद साहब का इंतकाल हुआ था।

मानस पुत्र तबलाचार्य पं. दिनकर मुजुमदार आज 93 वर्ष के हैं, साठ साल की उम्र तक उन्होंने साइकिल चलाई और 90 साल की उम्र तक सबको सिखाया, खुले दिल से सिखाया, खूब सिखाया, जैसे उस्तादजी ने उन्हें सिखाया, वैसे ही उन्होंने बिना एक पैसा लिए सबको तबला सिखाया और घर पर पढ़ने आने वाले विद्यार्थियों को गणित-विज्ञान की तालीम भी नि:शुल्क दी। उस्ताद जी की यादों को टटोटले हुए वे बताते हैं डॉक्टर शेख़ हातिम के बड़े भाई के यहाँ उस्तादजी का आना-जाना था, उनकी लकड़ी की टाल थी और वहाँ मैं भी उस्तादजी के साथ जाता रहा था इसलिए उस्तादजी जब बीमार पड़े तो छोटे भाई के अस्पताल में उनका इलाज चला और वहीं उन्होंने आख़िरी साँस भी ली। बनारस के पास के छोटे से गाँव से उम्र के चालीसवें साल में उस्ताद जहाँगीर साहब का इंदौर आना हुआ था। तब होलकर स्टेट (राजघराने) में लगभग महीने भर होलिका उत्सव हुआ करता था और हर दिन सांगितिक आयोजन होते थे। उसी दौरान किसी की संगत करने उस्तादजी आए थे और होलकर महाराज को उनका तबला इतना पंसद आया कि उन्होंने उस्तादजी से अपनी स्टेट में रहने का आग्रह कर लिया। फिर वे इंदौर के ही हो गए, उन्हें उस जमाने में 30 रुपए महीने की पेंशन मिलती थी। होलकर स्टेट की गायिका से ही उन्होंने निकाह किया। समय के साथ उस्तादजी का बेटा भी तबला बजाने लगा। उस बेटे को उर्दू सिखाने किसी तवायफ़ का लड़का आता था जिसने कह दिया कि तबला तो कोठे पर बजता है, यह सुनना था कि बेटे ने तबला बजाना बंद कर दिया। उस्तादजी इस बात से नाराज होकर बोल पड़े थे- क्या तुम्हें मेरा तबला कोठे पर बजने वाला लगता है?

परंपरा

संगत में पिता-पुत्री: पंडित मुजुमदार और संगीता अग्निहोत्री

पं. दिनकर मुजुमदार कहते हैं उस्तादजी का नाराज़ होना स्वाभाविक भी था। उस्तादजी का तबला चार घराने का संपन्न वादन है, जिसमें दिल्ली, लखनऊ की गतें हैं, फर्राबाद के क़ायदे-रेले हैं। पूरब घराने में फर्राबाद, बनारस, लखनऊ और दिल्ली का उसमें मिश्रण है, मतलब दिल्ली के पूर्व के जितने भी घराने हैं, वे पूरब घराने कहलाते हैं। उस्तादजी के पहले गुरू पटना के पास आजीमाबाद के मुबारक अली थे, उनके निधन के बाद लखनऊ घराने के उस्ताद आबिद हुसैन खाँ साहब से शिक्षा ली। उसके बाद फरूखाबाद के छन्नु खाँ साहब से सीखा और फिर दिल्ली घराने के फिरोज खाँ साहब से शिक्षा ली। वे दिनकरजी बारे में कहते थे मैंने पत्थर में दूब उगाई है क्योंकि दिनकर साहब का संगीत से वैसा कोई संबंध नहीं था, वे मध्यमवर्गीय मराठी ब्राह्मण परिवार से आते हैं, जहाँ खेती-किसानी और पढ़ने-लिखने का माहौल था। उस्तादजी अपने गाँव में कुश्ती खेला करते थे, शिष्य कैसे पीछे रहते...उनके इस खासमखास शिष्य ने भी अपने गाँव में जमकर खेती-किसानी की, दूध दुहा, आदमकद मथनी से दही मथा, कुएँ से पानी भरा...मेहनत मशक्कत से कभी जी नहीं चुराया।

ऐसा युवा जब शिष्य बना तो उस्ताद को इतना प्यारा हो गया कि उस्ताद ने उसे अपना बेटा ही मान लिया, इतना नेह लग गया कि उस्ताद रोज स्वयं चलकर शिष्य के घर आकर सिखाने लगे। जब उन्होंने अपने इस शिष्य को सिखाना शुरु किया तब शिष्य की उम्र थी लगभग 24 साल। गणित के इस छात्र का रुख़ तबले की ओर हुआ और फिर जितनी अच्छी पहचान गणित के शिक्षक के रुप में बनी उससे भी कहीं अधिक बड़ी पहचान तबले के पंडित के रूप में हो गई। पं. मुजुमदार ख़ुद तबले की ओर मुड़े या तबले ने ख़ुद इस हुनरमंद को अपने क़रीब कर लिया, कहना मुश्किल है। वैसे तो मध्यप्रदेश के छोटे से गाँव टिमरनी, जिला हरदा से मुजुमदारों का यह लड़का इंदौर में अपने फूफाजी नागेश रामचंद्र कलमकर के यहाँ पढ़ाई करने आया था। फूफाजी ने उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब से मिलवा दिया। उस्तादजी के नागेशजी बड़े प्रिय थे और उस लिहाज से पं. मुजुमदार भी उस्तादजी के प्रिय बन गए। जो पहला क़ायदा सीखा वह था– 'धागेतिट धागेतिट धागेतिरकिट तूना कत्ता'। पं. मुजुमदार पुरानी यादों में खोते हुए कहते हैं– मैं सरकारी स्कूल में शिक्षक था, इतनी आमदनी नहीं थी कि उस्तादजी को कुछ दे सकूँ और उस्तादजी ने भी कभी पैसे नहीं माँगे। मैं उनकी सेवा न कर सका।

पं. मुजुमदार के मन का यह संकोच उनकी सहधर्मिणी मालिनी ने शायद पहचान लिया था इसलिए जब तक वे जीवित रहीं उन्होंने घर आने वाले हर मेहमान का इतना स्वागत किया कि उनके घर से जाने वाला पूरी तरह अघाकर लौटा। पं. मुजुमदार अपनी सहधर्मिणी को याद करते हुए कहते हैं उस्तादजी को हमारे यहाँ का बना अचार इतना पसंद था कि वे अपने घर भी ले जाते थे। उनका भोजन कई बार हमारे घर होता था, उन्हें पापड़ भी बहुत अच्छे लगते थे। पत्नी ने सबकी पूरे मन से आवभगत की। उनकी बड़ी बेटी स्मिता (अब वाजपेयी) बताती हैं कि उस घर में इतने बड़े-बड़े कलाकार आकर गए कि आज सोचती हूँ तो ख़ुद ही हैरत में पड़ जाती हूँ। उस मोहल्ले ने भी हमें बहुत स्नेह दिया, किसी को हमारे यहाँ संगीत की रात-दिन होती चर्चाओं या आवाजों से दिक्कत नहीं हुई। घर के कामों में माँ की मदद करतीं, इतने मेहमान...नाते-रिश्तेदार, लगातार आना-जाना लेकिन सुबह के दो-तीन घंटे और शाम के दो-तीन घंटे रियाज़ से कोताही नहीं होती, मैं सितार लेकर बैठती, छोटी बहन संगीता तबला।

संगीता (अब अग्निहोत्री) कहती हैं कि कई कार्यक्रमों में बाबा पहली पंक्ति में बैठे होते और मैं बजा रही होती तो मेरा सारा ध्यान बाबा की ओर

उस्ताद और शागिर्द : जहाँगीर साहब तथा पंडित दिनकर मुजुमदार

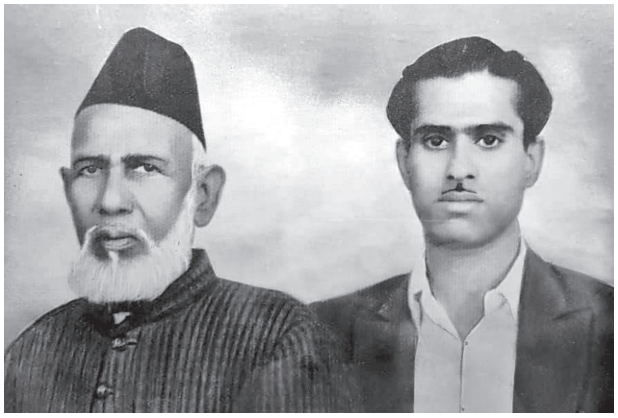

एक बार उस्तादजी से कोई तबला माँगने आ गया, उस्ताद जी ने सिंगल जोड़ी तबला उसे दे दिया। बाबा हतप्रभ रह गए, उस्तादजी को शायद यह भाव दिख गया, उन्होंने बड़े प्यार से कहा– 'मैंने तो उसे केवल तबला दिया है, तुम्हें तो पूरा 'तबला' दे दिया है'।

रहता, उनके चेहरे पर असंतोष दिखता और मैं मन मसोस कर रह जाती। लेकिन बाद में कई बार बाबा की आँखों से खुशी के आँसुओं को भी झरते देखा, तब उन्होंने यह भी कहा कि तुम्हें देखकर उस्तादजी की याद आ गई।

बाबा का कहना है 'बाँटते रहो', यह बाँटने का हुनर उन्हें अपने उस्ताद से मिला होगा। बाबा ने उस्तादजी से जो सीखा उसे कलमबद्ध किया और उनके हस्तलिखित मेरे पास आज भी हैं। बाबा बताते हैं कि उस्तादजी को लिखना नहीं आता था, लेकिन उनकी स्मरण शक्ति बहुत जबरदस्त थी और यही स्मरण शक्ति बाबा के पास भी है। जहाँगीर खाँ साहब ख़ुद हमारे घर आते थे, सिखाते थे और माहौल बना रहता था। पूरब के तबले की विशेषता बाबा ने सबको बताई कि बाएँ पर घिस्सा नहीं मारना, एक बार हाथ रख दिया तो कलाई के दबाव को कम-ज्यादा कर ही बजाना यह दिमाग में पैठ गया। डग्गे का 'दाबगास' (आवाज़ का घुमाव, कहाँ दबाना, कहाँ छोड़ना जैसे 'घेघेनग' में उतार चढ़ाव कैसे होगा) यह आजकल देखने में नही आता। ढग्गे के बोलों में उस्तादजी को महारथ हासिल थी। ढग्गे का काम जो बता पाए वही असली तबलावादक हो सकता है, ऐसे ढग्गे को संभालकर तबले के पास ले जाकर बैठाने वालों में हैं संगीता अग्निहोत्री, पं. दिनकर मुजुमदार और उस्ताद जहाँगीर खाँ साहब।

ये है ...जानकी बैंड

अदब और तहज़ीब के गहवारे भोपाल की वादियों में उतरती चैत्र की वो सुरमई शाम यक़ीनन अब भी इस शहर की रुह में महकती होगी। रवीन्द्र भवन के मुक्ताकाश मंच पर कविवर भवानी प्रसाद मिश्र की कविता ''सतपुड़ा के घने जंगल, उंघते-अनमने जंगल'' का सुरीला पाठ गूँज रहा था। गोधुली का यह मंगल मुहूर्त हिन्दी के स्वर्णिम अतीत को पुकार रहा था। कबीर और टैगोर से लेकर सुमित्रानंदन पंत और सुभद्रा कुमारी चौहान तक चली आ रही हिन्दी कविता का परचम थामे नई नस्ल की उमंगे फिज़ाओं में लहरा रही थीं। वनमाली स्मृति कथा सम्मान समारोह के इस पूर्वरंग के साक्षी नंदकिशोर आचार्य, रमेशचन्द्र शाह, ममता कालिया, दिव्या माथुर, गीताजंलिश्री और संतोष चौबे सरीखे अनेक नामचीन हस्ताक्षर थे।

मीठे-कोमल कंठ से झरती इन कविताओं को सुनकर याद आयी सामगान की प्राचीन परंपरा। वेद मंत्रों को सामूहिक स्वरों में गाते हुए हमारे गंधर्वों ने नाद के जिस अध्यात्मिक रहस्य और असर को समझा उसी मर्म को साहित्य और संगीत की डोर थामकर जनता के बीच जाने का हौसला जगाया है श्री जानकी बैंड ने।

आसमान की ओर सिर उठाती उम्मीद की हरी-भरी नन्हीं कोपल को नहीं मालूम कि एक दिन उसका दामन किसी छतनार वृक्ष में तब्दील हो जाएगा। आपदा और अवसाद के सन्नाटे फाँकते पहाड़ से दिनों को गाते-गुनगुनाते पार करती इन कन्याओं की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। यह कोरोना की महामारी में कला के एक नए जीवन के खिल उठने की पटकथा है जिसे इच्छा, हौसले और उमंगों ने मिलकर रचा। जबलपुर के श्रीजानकी बैंड ऑफ वुमेन की शोहरत और क़ामयाबी अब किसी से छिपी नहीं है। एक ऐसा समूह जिसने संस्कारधानी के नाम से मशहूर शहर को अब एक नई पहचान दी है। सुर के पंखों पर सवार ये जवाँ होती फ़नकार जब हिन्दी की भूली-बिसरी कविताओं और लोक तथा जनजातीय संगीत का इन्द्रधनुष रचती हैं तो उनका कोरस एक अलग ही सिम्फ़नी तैयार कर देता है। गायन स्वर भी महिला का और मुख़्तलिफ़ साज़ों को बजाने वाली भी महिलाएँ। सुन्दर सी पोशाकों में मंच पर जब ये प्रतिभाएँ नमूदार होती हैं तो इस बानगी पर निहाल हो जाने का मन करता है। आवाज़ के इन बिखरे हुए मोतियों को एक माला में पिरोने का काम किया सरदार दविन्दर सिंह ग्रोवर ने। वे रंगमंच के कलाकार हैं। नाटकों में कई क़िरदार निभा चुके हैं और जबलपुर में नाट्य लोक सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्था के संचालक हैं। दविन्दर के कानों में जब शब्द और नाद की हमजोली में निखरा इन तरुणियों का संगीत गूँजा तो वे सम्मोहित हो गये। पूरा कुनबा ही महिला संगीतकारों का उनके सामने था। मालूम हुआ कि इन कन्याओं को एकजुट करने वाली नेपथ्य की शक्ति डॉ. शिप्रा सुल्लेरे हैं। वे संगीत की शोधार्थी रही हैं। भक्ति काल की कविता पर उन्होंने पीएचडी की उपाधि हासिल की है। दविन्दर और शिप्रा की रचनात्मक संधि पर श्री जानकी बैंड अस्तित्व में

अनुगूँज

आया। पहली प्रस्तुति के लिए कोरोना काल में ही इस समूह को आमंत्रण मिला श्री जानकी रमण महाविद्यालय जबलपुर का। प्रस्तुति संपन्न हो जाने के बाद महाविद्यालय के प्राचार्य अभिजात कृष्ण त्रिपाठी ने ही इसका नामकरण किया- 'श्री जानकी बैंड ऑफ वुमेन'। ऑनलाईन कार्यक्रम को बड़े ही चाव से जबलपुर और दीगर शहर-क़स्बों के श्रोताओं ने सुना। यहाँ कबीर के निरगुण भक्ति संगीत से लेकर भवानी प्रसाद मिश्र की प्रसिद्ध कविता 'सन्नाटा' तथा जनजातीय और बुंदेली लोक धुनों की मटियारी महक थी। दरअसल यह जानकी बैंड का सुदूर यात्रा पर चल पड़ने वाला मंगलाचरण था। माँ सरस्वती के ही पवित्र मंच (जानकी महाविद्यालय) पर शब्द-स्वरों का यह अभिषेक निश्चय ही एक शिव-संकल्प को धारण करने की इच्छा शक्ति का प्रतीक भी था।

जानकी बैंड का संदर्भ लेते हुए कई सारे पहलुओं पर विचार करना ज़रुरी लगता है। पहला तो यही कि वृन्दगान की परंपरा की छूटी हुई कड़ी से नई पीढ़ी को जोड़ा जाये। सामगान के पाठ से लेकर सेना के जवानों में शौर्य और पराक्रम का जज़्बा जगाने, प्रार्थना सभाओं में भक्ति पदों को गाने, स्कूलों में प्रेरणास्पद गीतों की प्रस्तुति और सामाजिक जन-जागरण के लिए उत्साह की नई हिलोर जगाने वाली रचनाओं तक सामूहिक गान या कोरस सिंगिंग का अनिवार्य चलन रहा। याद करें अस्सी-नब्बे का दशक जब आकाशवाणी और दूरदर्शन पर नियमित रुप से पंडित सतीश भाटिया और विनयचन्द्र मौदगल्य के निर्देशन-संयोजन में वृन्दगान का प्रसारण किया जाता था। बाद में गंधर्व महाविद्यालय दिल्ली के छात्र-छात्राओं को लेकर पंडित मधुप मुद्गल ने भी अनेक प्रस्तुतियाँ देश भर में दीं। मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में 1980 से 2000 के दरमियान संतूर वादक पंडित ओमप्रकाश चौरसिया ने 'मधुकली वृन्द' के माध्यम से प्राचीन और आधुनिक कविताओं के प्रचार-प्रसार के लिए समूह गान शैली को चुना। उनके वृन्द में किशोर उम्र से लेकर साठ बरस की प्रौढ़-वरिष्ठ गान प्रतिभाएँ शामिल होती रहीं। चौरसियाजी के निधन के बाद 'मधुकली वृन्द' भी ख़ामोश हो गया। जबलपुर के ही संगीतकार युगल मुरलीधर नागराज और तापसी नागराज का परिवार इन दिनों वृन्दगान को लेकर ख़ासा सक्रिय है।

> सुर के पंखों पर सवार ये जवाँ होती फ़नकार जब हिन्दी की भूली-बिसरी कविताओं और लोक तथा जनजातीय संगीत का इन्द्रधनुष रचती हैं तो उनका कोरस एक अलग ही सिम्फ़नी तैयार कर देता है। गायन स्वर भी महिला का और मुख़्तलिफ़ साज़ों को बजाने वाली भी महिलाएँ। सुन्दर सी पोशाकों में मंच पर ये प्रतिभाएँ नमूदार होती हैं तो इस बानगी पर निहाल हो जाने का मन करता है।

भारत में नई सांस्कृतिक क्रांति के अग्रदूत गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने रवीन्द्र संगीत रचते हुए उसे समवेत स्वरों में गाने का संस्कार बंगाल को दिया। रुमा ठाकुर्ता के कलकत्ता यूथ क्वायर ने इस दिशा में ख़ासी सक्रियता और लोकप्रियता क़ायम की। ताज़ा दृश्य यह है कि टैगोर के विश्व भारती और दीगर संस्थाओं में भी इस विधा के उन्नयन को लेकर गंभीर प्रयत्न दिखाई नहीं देते। दुर्भाग्य से वृन्दगान जैसी प्रभावी और प्रेरक विधा को समृद्ध तथा लोकप्रिय बनाने में शासकीय और ग़ैर सरकारी स्तर पर भी कोई रुचि दिखाई नहीं देती। बरसों बाद श्री जानकी बैंड ने जैसे वृन्दगान की सात्विक, मधुर और रंजनकारी परंपरा का पुनर्वास किया है।

दरअसल संगीत समूह का संचालन करते हुए व्यावहारिक और तकनीकी दिक्कतें भी गिनाई जाती हैं। संगीतकारों का कहना है कि वृन्दगान की मेलॅडी और उसके सम्मोहन का गहरा असर श्रोताओं पर पड़ता है। वह गहन उर्जा से भरे स्वरों का संगीत है लेकिन प्रदर्शनकारी कला का रुप धारण करने के क्रम में आज गायकों को अपनी स्वतंत्र पहचान इसमें दिखाई नहीं देती। वृन्दगान की सुगढ़ प्रस्तुति बहुत अभ्यास माँगती है। शब्द, विचार, स्वरों का आरोह-अवरोह, परस्पर तालमेल और प्रस्तुति के दौरान भाव-भंगिमाएँ इन सबके साथ परिष्कृत और प्रभावी स्वरुप गढ़ने के लिए स्वयं का उत्साह, संस्कार, आत्मानुशासन आदि की दरकार कलाकार से होती है। यह भी कि वृन्दगान के कल्पनाशील, मेधावी और मेहनतकश संगीतकार भी अब सिमटते जा रहे हैं।

इन तमाम विसंगतियों के बीच जानकी बैंड की चहक-महक से परिवेश खिल उठा है। स्कूल शिक्षा विभाग को चाहिए कि वह जानकी बैंड को एक मॉडल के रुप में स्वीकार कर, उन्हें साथ लेकर वृन्दगान के प्रचार-प्रसार के लिए एक वृहद परियोजना तैयार करे। ''मिले सुर मेरा तुम्हारा, तो सुर बने हमारा''।

-विनय उपाध्याय

स्मृति शेष

जैसे कोई सर्दियों में धूप को छुपा ले

गीतकार माया गोविंद को याद करते हुए गोविंद गुंजन

''जैसे कोई सर्दियों में धूप को छुपा ले/जैसे कोई बदलियों से बूँद को चुरा ले/वैसे मैंने भी चुरा ली प्यार की ये पीर,/सेंदुर सेंदुर हो गई मेरे भाग्य की लकीर''। यह सिंदूरी भाग्य की लकीर बनाने वाली माया गोविन्द भाग्यवान थीं। उन्हें पाठकों और श्रोताओं का अपार प्रेम मिला। उनके गीतों में माटी और मानुष की पीड़ा बोलती है।

वे कवि सम्मेलनों की गरिमा के दिन थे। सत्तर-अस्सी के दशकों में मुझे याद है, तब हम रात-रात भर जाग कर कवि सम्मलेन सुना करते थे। खरगोन ज़िले के सनावद क़स्बे में नवंबर-दिसंबर के महीने में हज़रत पीरानपीर की दरगाह पर एक मेला पिछले सौ सालों से लगता है, और एक समय इस मेले की बड़ी ख्याति थी। अब समय के साथ रंग ज़रूर धुंधले हो गये हों, मगर अभी भी वो मेला हर साल लगता है। इस मेले में तब अखिल भारतीय स्तर के कवि सम्मलेन, मुशायरे और कव्वालियाँ होती थी। यहाँ के कवि सम्मलेन बहुत प्रसिद्ध थे। देश भर के ख्याति प्राप्त कवियों को सुनने का यहाँ अवसर मिलता था, और इन कवि सम्मेलनों की ख्याति इतनी थी कि आसपास के गाँवों के अलावा खरगोन, इंदौर, खंडवा तक से लोग कवि सम्मलेन, मुशायरे और कव्वालियों को सुनने के लिए पहुँचते थे। आयोजन स्थल पर स्त्री श्रोताओं का पंडाल भी पुरुष श्रोताओं के पंडाल से कम भरा ना होता था। रात भर चलने वाले कवि सम्मेलन के दिन मेले में बहार आ जाती थी। होटलें और दुकानदारों को भी इस दिन का इंतज़ार रहता था।

उन्हीं सत्तर के किसी दशक में पहली बार मैंने मेला पीरानपीर के उस प्रसिद्ध कवि सम्मलेन में माया गोविन्द जी को सुना था। बाद में भी कई बार उन्हें सुनने के अवसर मिले। माया जी सिर्फ़ नाम की माया नहीं थी, अपने मायावी जादू का जीता जागता करिश्मा भी थी। लोग उनके काव्य पाठ के दीवाने थे और उन्हें सुनने के लिए दूर-दूर से चले आते थे। उनकी उपस्थिति से कवि सम्मलेन का मंच गरिमा से संपन्न हो जाता था। उनके पहले कवि सम्मेलनों में महिला कवियों का ऐसा दबदबा कभी नहीं रहा था। कवि सम्मेलनों में पुरुष कवियों का ही वर्चस्व सर्वत्र छाया रहता था। धीरे-धीरे महिला कवियों का पदार्पण मंच पर शुरु हुआ तब उन रचनाकारों को मंच संचालक हँसी-ठिठोली के लिए निशाना बनाते थे, कव्वालियों की तर्ज़ पर उन पर भी छींटाकशी और परस्पर प्रच्छन्न अश्लील अर्थी संवादों से कवि गण एवं श्रोतागण समान रुप से मनोरंजन का हल्का-फुल्का मसाला पा लेते थे। दोहरे अर्थों वाले संवाद एवं चुटकलों की भी वही शुरुआत के दिन थे। ऐसे में माया गोविन्द एवं प्रभा ठाकुर जैसी समर्थ कवयित्रियों का आगमन कवि सम्मेलनों के मंच पर हुआ, जिनकी गरिमामय छवि एवं व्यक्तित्व ने कवि सम्मेलनों के मंच पर पूरा परिदृश्य बदल कर रख दिया। दुर्भाग्य से उनके बाद कवि सम्मेलनों में स्त्री गरिमा को सशक्त ढंग से वैसी पहचान नहीं मिल सकी।

माया जी सिर्फ़ नाम की माया नहीं थी, मायावी जादू का जीता जागता करिश्मा भी थी। लोग उनके काव्य पाठ के दीवाने थे और उन्हें सुनने के लिए दूर-दूर से चले आते थे। उनके व्यक्तित्व ने कवि सम्मेलनों के मंच पर पूरा परिदृश्य बदल कर रख दिया। दुर्भाग्य से उनके बाद कवि सम्मेलनों में स्त्री गरिमा को वैसी पहचान नहीं मिल सकी।

माया गोविन्द का काव्यपाठ एक ऐसा परिदृश्य रचता था, जिसमें सधा हुआ मधुर स्वर, अभिनय एवं नृत्य की भंगिमाएँ समवेत रुप से एकाकार हो कर जादू जगाते थे। कवयित्री होने से पहले वह संगीत, अभिनय, नृत्य सभी कलाओं में पारंगत हो चुकी थी। उन्होंने शंभू महाराज से कथक नृत्य सीखा था। गायन का स्वर भी सधा हुआ था, क्योंकि लखनऊ के भातखंडे संगीत विद्यापीठ से उन्होंने संगीत की शिक्षा भी प्राप्त की थी। यह उनका कलाप्रेम था, जिसने उन्हें कलाओं के विविध आयामों में रमने का अवसर दिया था, इसीलिये उनके गीतों में एक तरह का आकर्षण था जो श्रोताओं पर गहरा प्रभाव छोड़ जाता था।

सनावद के जिस कवि सम्मलेन का ज़िक्र ऊपर किया गया है, उसमें उनके साथ उनके पति राम गोविन्द जी भी लंबे सफ़र के कारण माया जी के साथ आये हुए थे, वह फिल्मों में उन दिनों संवाद लेखन कर रहे थे, लेकिन वो मंच पर नहीं गये, श्रोताओं के लिए लगी प्रथम पंक्ति में लगी कुर्सी पर बैठ कर उन्होंने भी कवि सम्मलेन सुना। मंच पर अपनी उपस्थिति दिखाने का उन्हें कोई मोह नहीं था।

उस कवि सम्मलेन में मायाजी ने अपना प्रसिद्ध गीत- 'डाकिये ने द्वार खटखटाया, अनबाचा पत्र लौट आया' जब पढ़ा तब उस शीत ऋतु में भी श्रोताओं ने ऐसी ऊष्मा का संचार महसूस किया जिसे बाद में भी भूलना मुश्किल था। 'अनबाचा पत्र' यह शब्द माया जी ने गढ़ा था, इस शब्द की सुन्दरता महसूस करने जैसी है। उनके पहले हिन्दी कविता या गीतों में यह शब्द पहले पढ़ा या सुना नहीं गया था। ऐसे विरल और सुंदर शब्द प्रयोग उनकी रचनाओं में और भी हैं जो उनकी रचनाओं में एक कशिश पैदा करते हैं। मुझे याद है उन दिनों कितने ही लोग उनके गीतों को फ़िल्मी गीतों की तरह गुनगुनाते थे। बाद में वो फ़िल्मों में भी गीत लेखन में सक्रिय हुई एवं वहाँ भी पुरुष गीतकारों का वर्चस्व तोड़ कर अपनी पहचान बनाने में सफल हुई।

उस कवि सम्मलेन में उन्होंने अपने फ़िल्मी गीतों के सफ़र के शुरुआती सफ़र की एक ऐसी बात बताई थी जो मुझे आज भी याद है। यह बात गीत रचना की सफलता का रहस्य भी खोलती है। उन्होंने कहा कि- 'सुप्रसिद्ध संगीतकार कल्याण जी ने उनसे कहा था कि आनंद बख़्शी चलते फिरते जो बोल देते हैं, उसे ही लोग गुनगुनाने लगते हैं। गीत ऐसे लिखे जाने चाहिए जो बोलचाल की तरह सहज हो। जिसमें सुनने वाले को लगे कि उसके मन की बात कह दी गयी है।

माया गोविन्द ने यह सूत्र अच्छी तरह से समझ लिया था, इसका प्रमाण है फ़िल्म 'आरोप' (1973) में भूपेंद्र हजारिका के संगीत निर्देशन में उनका लिखा यह पहला ही गीत जिसे लता जी एवं किशोर दा ने अपने स्वर दिए थे- 'नैनों में दर्पण है, दर्पण में कोई, देखूँ जिसे सुबह शाम...', 'बोलो जी बोलो, ये राज खोलो, हम भी सुने दिल को थाम....'

माया गोविन्द के गीतों में प्रणय और श्रंगार के कितने ही मधुर आयाम खुलते हैं। जैसे सर्दियों में धूप बादलों के पीछे छिपी रहती है, वैसी ही प्रेम की गहन ऊष्मा उनकी सीधी सादी शब्दावलियों में छिपी रहती है। वह कहती है— ''जैसे कोई सर्दियों में धूप को छुपा ले/जैसे कोई बदली से बूँद को चुरा ले/वैसे मैंने भी चुरा ली प्यार की ये पीर,/सेंदुर सेंदुर हो गई मेरे भाग्य की लकीर''/ यह सिंदूरी भाग्य की लकीर बनाने वाली माया गोविन्द भाग्यवान थी। उन्हें अपने पाठकों एवं श्रोताओं का अपार प्रेम मिला। उनके गीतों में माटी और मानुष की पीड़ा बोलती है। दिल्ली के लालकिले से एक कवि सम्मलेन में जब उन्होंने ''जीवन के सौदागर बोल, मिट्टी का क्या होगा मोल'' पढ़ा तो उनके गीतों की प्रशंसा अध्यक्षता कर रहे राष्ट्र कवि राम धारी सिंह दिनकर ने भी की थी।

17 जनवरी 1940 को जन्मी माया गोविन्द के अनेक गीत संग्रह भी प्रकाशित हुये, जिसमें 'सुरभी' के संकेत, 'तुम्हें मेरी कसम', 'छंद रस माधुरी', 'कृष्णमयी', 'चाँदनी की आग' एवं 'नीली झील में दर्पण' प्रसिद्ध हुए हैं। उनके हृदय में पीड़ा का स्वर है। लेकिन यह पीड़ा अन्तस् की गहरी घाटियों में छुपी रहती है, और फिर किसी अश्रु धार सी बह निकलती है। जिसे उन्होंने कजरे की बाती अंसुवन के तेल में, आली मैं हार गई अंखियों के खेल में, कहते हुए अभिव्यक्ति दी थी।

07 अप्रैल 2022 को उन्होंने इस संसार को अलविदा कह दिया, पर अपने गीतों में वह सदा हमारे साथ रहेगी।

बुकर और हिन्दी की बहस

अजय बोकिल

प्रसंगवश

लगता है हम हिंदी वाले ख़ुश होना भी भूल गए हैं। हिंदी कथाकार, उपन्यासकार गीतांजलि श्री के मूल हिंदी 'रेत समाधि' के अंग्रेजी में अनूदित उपन्यास 'टूम ऑफ सेंड' को मिले प्रतिष्ठित बुकर पुरस्कार की सुखद बयार भी आपसी तू- तू मैं-मैं, ख़ेमाई चश्मों और मेरे-तेरे के दुराग्रहों के बीच खोती लग रही है। गीतांजलि की कृतित्व के बजाए बहस उस तकनीकी बिंदु की ओर मोड़ने की कोशिश जा जारी है कि पुरस्कार मूल कृति को मिला या अनुवाद को? यानी पुरस्कृत अनुवाद का क्या जश्न मनाना? यह सोच मूल रचना तो छोड़िए अनुवाद की महत्ता को लेकर हमारी कमतर सोच को प्रकट करती है। कुछेक लेखकों, साहित्य मनीषियों ने इस पर ख़ुशी जाहिर की और इसे 'हिंदी में नई सुबह' तक कहा, लेकिन कुल मिलाकर इस अंतरराष्ट्रीय कामयाबी पर हिंदी जगत का रुख़ उपेक्षा और उपहास भरा ज़्यादा दिखा। सबसे ज्यादा निराशाजनक रवैया उन राजनेताओं का रहा, जो हिंदी की बदौलत ही अपने काम और राजनीति का डंका बजवा रहे हैं। बुकर विजेता गीतांजलि के लिए बधाई का एक लाइन का ट्वीट तक नहीं।

ग़ौरतलब है कि ब्रिटेन में बुकर प्राइज़ की स्थापना 1969 में बुकर और मैकोनेल कंपनी ने की थी। पहले इस पुरस्कार का नाम 'बुकर प्राइज फिक्शन' यानी उपन्यास के लिए बुकर पुरस्कार था। शर्त ये थी कि उपन्यास अंग्रेजी भाषा में हो और यूके (यूनाइटेड किंगडम) अथवा आयरलैंड में प्रकाशित हो। शुरु में इस पुरस्कार के हक़दार राष्ट्रमंडल देशों के लेखक ही हुआ करते थे। 2014 में यह शर्त हटा ली गई। इस पर विवाद भी हुआ। सन 2002 में एक और नया पुरस्कार 'मैन बुकर प्राइज' शुरु किया गया। इसकी स्थापना 'मैन ग्रुप' ने की थी। 2005 में एक और पुरस्कार की शुरुआत की गई। इसे क्रेंकस्टार्ट चौरिटेबल फाउंडेशन प्रायोजित करता है। इसे 'इंटरनेशनल बुकर प्राइज' के नाम से जाना जाता है। यह पुरस्कार अंग्रेजी में लिखी गई श्रेष्ठ कृति अथवा किसी विदेशी भाषा के अंग्रेजी में किए गए अनुवाद के लिए दिया जाता है। यह पुरस्कार 50 हजार पाउंड का है। यह पुरस्कार लेखक की निरंतर सृजनात्मकता, विकास तथा वैश्विक मंच पर उपन्यास के क्षेत्र में समग्र योगदान' के लिए दिया जाता है। लेकिन यहाँ भी सम्बन्धित कृति का यूके अथवा आयरलैंड से प्रकाशित होना जरूरी है। ये सभी पुरस्कार बुकर प्राइज फाउंडेशन देता है। गीतांजलि श्री के मूल हिंदी उपन्यास के अंग्रेज़ी अनुवाद को इंटरनेशनल बुकर प्राइज़ श्रेणी में पुरस्कार मिला है। पुरस्कार में मूल लेखक और अनुवादक दोनो का समान महत्व रखा गया है। यहाँ तक कि पुरस्कार के लिए विचाराधीन कृतियों की दीर्घसूची में शामिल मूल लेखक और अनुवादक को भी समान रूप से 1 हज़ार पाउंड का प्रोत्साहन पुरस्कार दिया जाता है। इस पुरस्कार का मूल उद्देश्य यही है कि मूल भाषा के साथ-साथ उसके अनुवाद की महत्ता को भी लोग समझें। इसके पहले यह पुरस्कार कोरियाई, हिब्रू, पोलिश, अरबी, डच और फ्रेंच भाषा की कृतियों के अनुवाद को दिया गया है। इस सूची में पहली बार 'हिंदी' का नाम जुड़ा है, जो हर हिंदी भाषी के लिए गौरव की बात होनी चाहिए।

हिन्दी उपन्यास 'रेत समाधि' की बुकर विजेता गीतांजलि श्री और इस कृति की अंग्रेज़ी अनुवादक डेज़ी रॉकवेल

लेकिन जिस दिन पुरस्कार घोषित हुआ, उसी के साथ उसकी छीछालेदर भी हिंदी जगत में शुरु हो गई। कुछ प्रतिक्रियाओं में, उपहास, बौखलाहट, विद्वेष या उलाहना भी दिखा। मानो बुकर पुरस्कार देने वाली जूरी ने कोई महान ग़लती कर दी हो। इस जूरी में अग्रणी साहित्य आलोचक, लेखक, अकादमिशियन और जानी-मानी सार्वजनिक हस्तियाँ होती हैं। यह

जूरी भी एक परामर्शदात्री समिति तय करती है। इस बार पुरस्कार की ज्यूरी में शामिल फ्रैंक वाईन ने कहा, 'यह भारत और विभाजन का एक चमकदार उपन्यास है, लेकिन जिसकी मंत्रमुग्धता और उग्र करुणा यौवन और उम्र, पुरुष और महिला, परिवार और राष्ट्र को एक बहुरुपदर्शक में बुनती है।'

गीतांजलि श्री को यह पुरस्कार मिलने के बाद कुछ लोगों ने उनके कृतित्व से ज्यादा बीबीसी पर दिए गए इंटरव्यू पर निशाना साधा। कहा गया कि जिसकी बोलचाल की हिंदी ही शुद्ध न हो, वो क्या ख़ाक उपन्यास लिखेंगी। कुछ लोग यह तलाशते रहे कि गीतांजलि श्री किस ख़ेमे से हैं, 'अपने' या 'उनके'। वामपंथी हैं, दक्षिण पंथी हैं या उदार पंथी? किसी भी ख़ेमे में नहीं हैं तो उनके बारे में क्या बात करना? कुछ उन्हें 'साउथ इंडियन' भी समझ रहे थे। क्योंकि किसी हिंदी लेखक का नाम अंतराष्ट्रीय मंच पर चमके यह कैसे हो सकता है और 'गलती' से हो ही गया है तो इसके पीछे 'जुगाड़' क्या है? यह भी कुछ शातिर दिमाग़ 'साहित्यकारों' ने खोजने की कोशिश की। यह सिद्ध करने की कोशिश भी की गई कि दरअसल पुरस्कार तो अंग्रेज़ी अनुवाद को मिला है, हिंदी मूल को नहीं। कुछ इस गफ़लत में रहे कि माजरा है क्या? नारी विच सारी है कि सारी विच नारी है? सोशल मीडिया पर तो सारा खेल आधी अधूरी जानकारी और अर्द्ध सत्य पर ही चल रहा था। इससे कोई भी गैर हिंदीभाषी आसानी से यह अंदाज़ लगा सकता है कि हिंदी भाषियों में किसी अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार को पचाने की तमीज भी नहीं है। अव्वल तो उन्हें ऐसा कोई पुरस्कार पाने लायक ही नहीं समझा जाता, समझ लिया गया तो वो ख़ुद अपने को इस लायक नहीं समझते। जबकि बुकर जैसा पुरस्कार साहित्य में उत्कृष्टता के लिए दिया जाता है। अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार संयुक्त रुप से पाने वाली गीतांजलि श्री पहली भारतीय महिला है। इसके पहले जिन भारतीयों को यह पुरस्कार मिला, वो हैं सलमान रूश्दी, अरूंधती रॉय और किरण देसाई। लेकिन उन्हें जो पुरस्कार मिला था, वो है 'मैन बुकर प्राइज़।' ये पुरस्कार उन्हें उनकी अंग्रेजी में लिखित कृति के लिए दिया गया था।

गीतांजलि श्री के लेखन, उसकी उत्कृष्टता, वैचारिक प्रतिबद्धता, शिल्प और भाव पर बहस हो सकती है। लेकिन पुरस्कार के औचित्य पर ही सवाल उठाना ख़ुद को कमतर स्वीकार करने जैसा है। क्या हिंदी भाषियों में आत्महीनता का भाव अंगद बनकर बैठ गया है? बहुत थोड़े सुधीजन दिखे, जिन्होंने गीतांजलि श्री के लेखन को सराहा, उसमें नयापन ख़ोजा और उसे पुरस्कार के सर्वथा योग्य माना। इस घटना से न केवल हिंदी बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं से अंग्रेजी में अनुवाद की माँग निश्चित ही बढ़ेगी साथ ही उत्कृष्ट अनुवाद के रास्ते भी खुलेंगे।

बेशक बुकर पुरस्कार पाने के बाद गीतांजलि श्री ने अपने वक्तव्य में कहा, 'ये मेरे लिए बिल्कुल अप्रत्याशित है। मैंने कभी बुकर का सपना नहीं देखा था। यह बहुत बड़े स्तर की मान्यता है जिसको पाकर मैं विस्मित हूँ। मैं प्रसन्न, सम्मानित और विनम्र महसूस कर रही हूँ।' उन्होंने कहा कि मैं एक भाषा और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हूँ और यह मान्यता विशेष रूप से हिंदी साहित्य की पूरी दुनिया और समग्र रुप से भारतीय साहित्य को व्यापक दायरे में लाती है'।

लेकिन सवाल यह है कि क्या हिंदी वालों के दिल और दिमाग की दुनिया भी उतनी ही व्यापक है, जिसका ज़िक्र गीतांजलि श्री कर रही हैं?

भोपाल में आयोजित एक गरिमामय समारोह में वनमाली राष्ट्रीय कथा सम्मान से विभूषित गीतांजलि श्री। अलंकरण प्रदान करते हुए ज्येष्ठ आलोचक धनंजय वर्मा, कथाकार ममता कालिया तथा वनमाली सृजन पीठ के राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा कथाकार-कवि संतोष चौबे

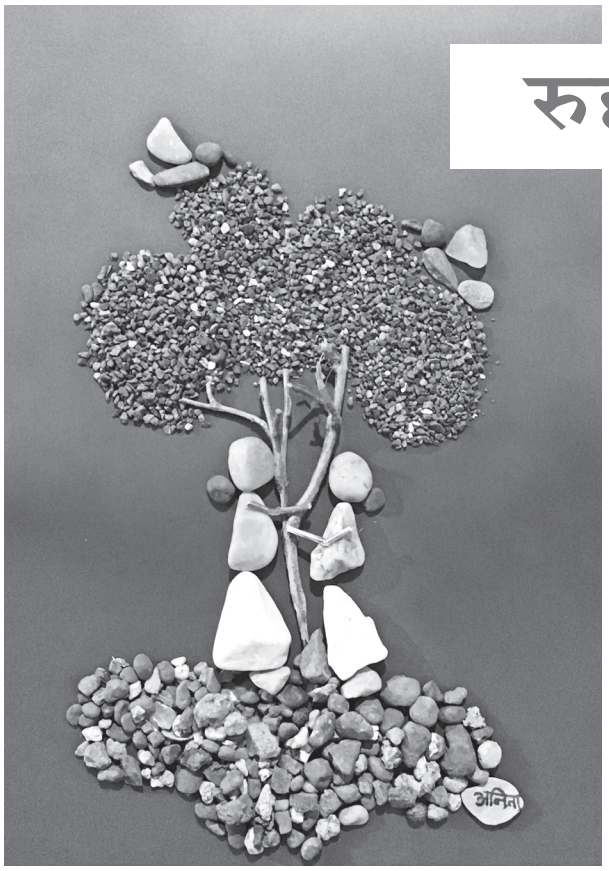

हुनर

रुह की धड़कन बन गए पत्थर

राह चलते एक दिन कुछ चमकीले पत्थरों ने अनिता को ठहरने के लिए विवश कर दिया। रुह पुकार उठी कि पत्थरों के सख़्त दामन में भी दिल बसता है। उसकी धड़कनें सुनी जा सकती हैं। इन आवाज़ों में अपनी आवाज़ सुनी जा सकती है। बस, यही उन्वान था और अनिता एक नयी यात्रा पर निकल पड़ी...। शिल्प कला के संसार में वे निहायत नया और अनूठा इतिहास रचते हुए कलाकारों की पांत में अलहदा सी पेश आ रही हैं। कहना बेमानी नहीं कि उनकी आगोश में आकर पत्थरों में प्राण आ जाते हैं।

एक बार फिर यह यक़ीन पुख़्ता हुआ कि अगर आपके पास पारखी नज़र और जुदा-सा हुनर है तो हर चीज़ में कोई धड़कन खोजी जा सकती है। बेआवाज़ से बिखरे पत्थरों से ऐसा ही गुफ्तगू का सिलसिला बना और एक मुक़ाम पर पहुँचकर लगा कि इनके हर क़तरे में क़ायनात की रंग-बिरंगी मूरतों को गढ़ा जा सकता है। पूना की रहवासी अनिता दुबे की फितरत पर अब यही जुनून सवार है। शिल्प कला के संसार में वे निहायत नया और अनूठा इतिहास रचते हुए कलाकारों की पांत में अलहदा सी पेश आ रही हैं। कहना बेमानी नहीं कि उनकी आगोश में आकर पत्थरों में प्राण आ जाते हैं।

भोपाल में अनिता का लड़कपन साहित्य और कला प्रेमी परिवार के साए में बीता। पढ़ने-लिखने के संस्कार मिले। युवा समय में रेडियो से भी राब्ता जुड़ा। शादी के बाद का बहुत सारा वक़्त दुनियावी ज़िम्मेदारियों को सम्हालते गुजर गया। इस राह पर चलते एक दिन कुछ चमकीले पत्थरों ने अनिता को ठहरने के लिए विवश कर दिया। रुह पुकार उठी कि पत्थरों के सख़्त दामन में भी दिल बसता है। उसकी धड़कनें सुनी जा सकती हैं। इन आवाज़ों में अपनी आवाज़ सुनी जा सकती है। बस, यही उन्वान था और अनिता एक नयी यात्रा पर निकल पड़ी...।

पत्थरों ने अनिता के मन पर कुछ ऐसा असर किया कि उनकी हर नस्ल में उसे कोई न कोई आकृति दिखाई देती। वे कहती हैं- पिछले कई सालों से मुझे गणपति की आभा लिए कुछ पत्थर मिले, तो कभी कोई दूसरा चेहरा उनमें दिखाई दिया। अक्सर जिनसे रास्ते चलते ठोकर लगी या वो पैरों के नीचे आये वो पत्थर भी अद्‌भुत निकले। केरल से लेकर अंडमान, गोवा, कच्छ, नलिया, भुज, जोधपुर, औरंगाबाद, कर्नाटक से लेकर बीजापुर तक पत्थरों की अनेक क़िस्में मेरे सामने थीं। मध्यप्रदेश की हूँ और ससुराल जबलपुर के पास तो नर्मदा नदी से कई पत्थर मैंने जमा किए। वैष्णव देवी घूमने गई तो आर्मी के गेस्ट हाऊस के पीछे बहते झरने से छोटे-छोटे कई पत्थर ले आई। अंबाला में भी यही हुआ।

अनिता बताती हैं कि अपनी दो बेटियों के बड़े होने के साथ यह शौक़ कम ना हुआ। उनको भी यह आदत पड़ी। पत्थरों का भारी बक्सा बन गया। मैं अपनी ज़िद पर अड़ी रही।

अनिता के पास इन पत्थरों से जुड़ी रोचक आप बीती है। वे एक वाक़या सुनाती हैं- पति पंजाब बार्डर पर पोस्टिंग में गये तब दो-तीन बक्सों में पत्थर ही थे। अब समस्या यह आई की हमें पुणे में ही सिविल के घर में चौथी मंजिल के छोटे घर में शिफ़्ट होना था। बहुत सा सामान भरे बक्से एक युनिट में रखे गये। ज़रुरत का कम सामान ही फ्लैट में ले गये। मगर पत्थर के बक्से मैंने यूनिट नहीं भेजे। फ्लैट के गैराज में ही रखे। छः-सात साल वो बक्से बंद रहे। हर बार बाहर जाते समय कार निकालती तो लगता पत्थर अन्दर बैठे कोसते होंगे की बीनकर हमें क़ैद कर लिया है।

पति की पोंस्टिग पंजाब से वेस्ट बंगाल भूटान बार्डर पर हुई। वहाँ पहुँचते ही उन्हें डेंगू हो गया। हमारे दिन अस्पताल में बीतने लगे। उस दौरान भी जब ख़ालीपन और उदासी हिस्से आई तो पत्थरों ने ही मेरा साथ दिया। लिखने के साथ साथ संगीत सुनना, पेन्टिंग, ज्वेलरी बनाना भी मेरा शौक़ है और लगभग हर दिन मैं कुछ सृजन करती ही हूँ। कभी इन पत्थरों से मैंने कविता रची, कभी प्रकृति के चित्र उकेरे तो कभी चेहरे गढ़े। अक्टूबर का महीना आया। दशहरा सामने था। हर दिन मैं राम लीला के प्रसंग बनाकर तस्वीरें खींचती। बेटियाँ फोन पर पूछतीं आज क्या किया तो उनको तस्वीरें भेज देती। तभी एक दिन फेसबुक पर कुछ तस्वीरें पोस्ट की और फिर यह सिलसिला चल पड़ा। लोगों को पसंद आने लगा वो काम जिसे मैं लगभग 10 साल पहले छोड़ चुकी थी। इसी बीच कुछ लोगों ने मेरे काम को अपनी वॉल पर शेयर किया। बहुतों ने तारीफ़ की तो कुछ नकारात्मक टिप्पणियाँ भी मिलीं। मैने सोचा जिन पत्थरों के साथ इतने बरसों से हूँ अब उनको कैसे सच साबित करुँ। लिहाज़ा हर दिन के ख़ास त्योहारों पर शुभकामनाएँ आदि बनाकर पोस्ट करने लगी। इसी बीच किसी ने मुझे कविताओं को पत्थर से लिखने की चुनौती दी और इस तरह साहित्य को भी पत्थर से व्यक्त करने की दिशा खुली और उसमें कामयाब हुई। धीरे-धीरे कुछ पुराने पत्थर निकाले जिनसे पहले सृजन करती थी। उसमें भूटान बार्डर के पत्थर भी शामिल किए हैं।

जब मैं अपनी इस रचनात्मकता को देखती हूँ तो बचपन और तरुणाई की अनेक बातें प्रेरणा की तरह याद आती है। महात्मा गाँधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर का दर्शन अनायास ही मेरी इस अभिव्यक्ति में साकार हो उठा है। गुरुदेव का शांति निकेतन और वहाँ प्राकृतिक वातावरण में शिक्षा की कल्पना मेरे मन में भी कई बार उठीं। वहाँ जाना तो संभव नहीं हुआ लेकिन जीवन और प्रकृति के परस्पर संबंधों को मैंने गहराई से अनुभव किया। पत्थरों के साथ मेरी दोस्ती और उनमें सृजन की गहरी संभावनाओं का नया सिलसिला भी टैगोर के कला आदर्श से जुड़ी मेरी अंतरप्रेरणा है।

अब हर दिन कुछ बनाती हूँ। उन पत्थरों को आज़ाद करती हूँ। उनसे सृजन करके रुप बदलती हूँ। अनिता कहती हैं कि छोटा सा कंकर भी मुझे प्यारा है। बजरी, ईट, गिट्टी, लकड़ी, सूखी जड़े आदि सब इसका हिस्सा हैं। जिनका मोल तो 'कुछ नहीं' के बराबर है लेकिन मेरे लिए किसी गहने तोहफ़े से ज्यादा ये क़ीमती हैं। उन सभी से मेरी पहचान है। इन कलाकृतियों से कलाप्रेमियों के परिचय का दायरा जब बढ़ा है तो मेरी चुनौतियाँ भी बढ़ गयी हैं। लेकिन मेरा सफ़र बदस्तूर जारी है। हाल ही मैंने साहित्य और कला की मूर्धन्य विभूतियों के पोर्ट्रेट बनाए हैं। टैगोर से लेकर प्रेमचंद और सुमित्रानंदन पंत तक। ...दरअसल ये पत्थर मेरी आत्मा की पुकार बन गये हैं। **-विनय उपाध्याय**

पत्थरों ने अनिता के मन पर कुछ ऐसा असर किया कि उनकी हर नस्ल में उसे कोई न कोई आकृति दिखाई देती। दरअसल ये पत्थर उनकी आत्मा की पुकार बन गये हैं।

गुरुदेव

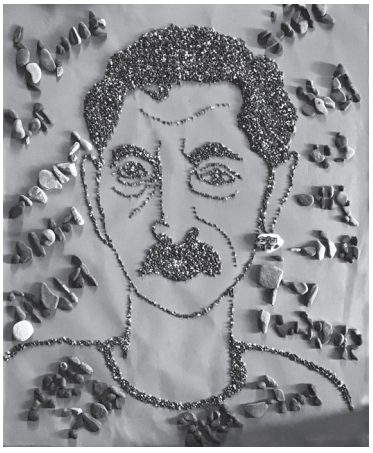

मुंशी प्रेमचंद

परवाज़

हो चित्त जहाँ भय शून्य

बचपन और सृजन

मुदित श्रीवास्तव

एक बार बच्चों के साथ मैं लिखने पर बातचीत कर रहा था। मैनें उनसे कहा कि जाओ, यहाँ जितनी भी आस-पास चीज़ें दिखाई दे रहीं हैं उनसे कुछ सवाल करो। बस, इस बात का ध्यान रखना है कि तुम्हें उन ही चीज़ों से बात करनी है जो पलट कर तुम्हें जवाब नहीं दे सकते। मतलब उनका जवाब क्या होगा वह भी तुम्हें ख़ुद ही सोचना होगा। ख़ुद ही कल्पना करनी होगी। 10-15 मिनट के बाद जब वापस सब बच्चे आ गए तो सभी ने अपनी-अपनी बातें मुझे सुनाई। सारी की सारी दिलचस्प और बहुत ही रोचक बातें थीं, उन्हीं में से एक बच्ची ने कहा-'मैनें मिट्टी से पूछा- तुम गमले में क्यों रहती हो? मिट्टी ने कहा- क्यूँकि मुझे एक पौधे को पालना है'। उसका जवाब सुनकर बाकी बच्चों ने कोई ख़ास प्रतिक्रिया नहीं दी लेकिन वहाँ जितने 'बड़े' मौजूद थे उनकी शक्ल देखने लायक थी।

चित्रः अशोक भौमिक

एक और वर्कशॉप में जब मेरा परिचय दिया गया और कहा गया कि मैं भोपाल से आया हूँ और बच्चों से पूछा गया कि पता है भोपाल कहाँ है? और मध्य प्रदेश कहाँ हैं ? एक बच्चे ने चिल्ला कर, बेख़ौफ मन से कहा 'किताब में है, भारत का नक्शा जो बना है उसमें है मध्यप्रदेश'। बाकि सारे बच्चों ने तालियाँ बजा दी और 'बड़े' झेंप गए।

'पापा! वह देखो पानी का अनारदाना' यह बात 10 साल के एक बच्चे ने तब कही जब उसने पहली बार पानी के फव्वारे को देखा। बच्चों के ऐसे ही कितने जवाब और कितनी बातें है जो हम बड़ों को मूक बना देती है। और हमारा चेहरा 'सही तो कह रहा है' सा हो जाता है। एक पल को ठिठक जाते हैं। अगर शुरु से शुरुआत करें तो कल्पनाशीलता और कला के सभी आयाम बच्चों के साथ जन्म के तुरंत बाद से ही जुड़ते चले जाते हैं। या क्या पता वे गर्भ में वे जब एक नींद में खोए हुए होते हैं तब भी बाहर से आ रही आवाज़ों के आधार पर कुछ कहानियाँ बुन रहें हों? या चित्र गढ़ रहे हों?

देखा जाए तो चित्रकला सबसे पहले बच्चों का हाथ थामती है। ज़ाहिर सी बात है इसकी शुरुआत देखने से होती है। तमाम दृश्य जो बच्चे पहली बार देखते हैं वे सब चलते-फिरते या रुके हुए चित्रों से ज़्यादा और हैं भी तो क्या? चित्र और रंग ये वे कला के माध्यम हैं जो बच्चों में सबसे पहले कौतूहल का विषय बनते हैं। बच्चे लिखना बाद में सीखते हैं वे पहले चित्र बनाते हैं। शुरुआती चित्र तो इतने अमूर्त होते हैं कि उसे समझना 'बच्चों का खेल' नहीं है। जब हम बड़ों को यह राज़ की बात पता चली तो हमने उनके मजे में सीख डालनी शुरु कर दी। क्यूँकि हमारे हिसाब से कोई भी चीज़ अगर बच्चों के लिए है तो उसमें कुछ न कुछ सीख ज़रुर होनी चाहिए। हमें पता चल गया कि इन्हें चित्र पसंद है तो चित्रों के ज़रिए इन्हें पढ़ाना चाहिए। ऐसे बच्चों की किताबों में चित्रों ने अपनी जगह बनायी। चित्र के बाद आयी भाषा। भाषा सीखने से भी पहले बच्चे लय और ताल को पकड़ लेते हैं।

यूँ बच्चों की दुनिया में संगीत प्रवेश करता है। कवि नरेश सक्सेना अपनी एक कविता में कहते हैं- ''शिशु लोरी के शब्द नहीं/संगीत समझता है/बाद में सीखेगा भाषा/अभी वह अर्थ समझता है...''। जब हम बड़ों को बच्चों की यह बात समझ में आयी तो हमने तुकबंदी की सहायता से, कविताओं की सहायता से उन्हें सिखाने की कोशिश भी शुरु की और चित्रों के साथ किताबों में 'राइमिंग' ने भी अपना अधिकार जमाया। कुल मिलाकर जिन भी चीज़ों में बच्चों को मज़ा आता था हमने उसमें सीख डालनी शुरु कर दी और मज़े को हमने बचपन से अलग कर दिया। बच्चों की किताबों में चित्रों और कविताओं का होना

बहुत ज़रुरी तो है ही लेकिन जब तक उसमें मज़ा नहीं होगा तब तक वह व्यर्थ है। गुलज़ार साहब इतने सालों से लिख रहे हैं। फिर भी उनका लेखन इतना ताज़ा लगता है। विनोद कुमार शुक्ल इस उम्र में भी बच्चों के नई-नई रचनाएँ गढ़ रहे हैं। कैसे? क्योंकि वे बच्चों के साथ ज़्यादा वक़्त बिताते है। उनसे बतियाते हैं। उनकी दुनिया में चहलकदमी करते हैं। बच्चों की अपनी एक अलग दुनिया है। जिसकी बातें हम बड़ों को कभी समझ नहीं आती। हम 'बड़े होने' की परिभाषा के बोझ तले इतनी नीचे दबे हुए हैं जहाँ से बचपन का आसमान जरा भी नहीं दिखाई देता।

'हो चित्त जहाँ भय शून्य' रवीन्द्रनाथ टैगौर इस बात को लिखते हुए ख़ुद बच्चा सा महसूस करते हैं। जिसे किसी बात का भय नहीं है और वह अपनी अभियक्ति के लिए स्वतंत्र है। बस यहीं से सृजनशीलता विकसित होनी शुरु होती है। जब बच्चे किसी को कलाकृति गढ़ते हैं तो वे बिना किसी की परवाह किए उसे रचते हैं। जैसा वे चाहते हैं बिलकुल वैसा ही। पेड़ का रंग नीला हो सकता है। आकाश लाल और गुलाबी भी हो सकता है। कौआ पीला और ख़रगोश हरा भी हो सकता है। लेकिन दुःख की बात यह है कि जब ये चित्र और ये रंग बच्चों के दिमाग से निकल कर ड्राइंग शीट पर बड़ों की दुनिया में आते हैं तो खारिज कर दिए जाते हैं। उन्हें नकार दिया जाता है। क्योंकि बड़ों की दुनिया के रंग एक तरह के ही हैं। पेड़ हरा ही है। आकाश नीला, कौआ काला और ख़रगोश सफेद ही है।

बड़ेपन और बचपन यह जीवन के दो चरण नहीं। दो अलग-अलग दुनियाएँ हैं। एक दुनिया में बेबाकी है नासमझी है। अनन्त कल्पनाएँ हैं। अमूर्त रचनाएँ हैं। बेबाक अभिव्यक्तियाँ हैं। दूसरी दुनिया में नियम हैं, क़ायदे-कानून हैं, तकनीक है, सही-गलत है, अच्छा- बुरा है। बड़ों ने बच्चों की कलाकृतियों को 'समझने' की बहुत कोशिश की लेकिन हमेशा असफल रहे। जबकि उसमें समझना है ही नहीं 'मज़ा' है।

दरअसल ये दो दुनियाएँ समझ और मज़े की दुनियाएँ हैं। हम बच्चों को मज़े की दुनिया से खींच कर समझ की दुनिया में जल्द से जल्द लाना चाहते हैं। हम बच्चों को अपने नज़दीक लाने के लिए उन्हें उनकी दुनिया से अपनी दुनिया में लाने की कोशिश करते हैं। इसके उलट यदि हमें उन्हें अपने क़रीब लाना है तो उनकी दुनिया में जाना होगा। समझ की दुनिया छोड़ मज़े की दुनिया में उनके साथ शामिल होना होगा। वे जैसे रंग देखते हैं। वे जैसे आसमान देखते हैं, पेड़, पत्ते, नदी, पत्थर देखते हैं। वैसे ही हमें भी देखना होगा। अगर नहीं देख सकते तो कम से कम उनके देखे हुए को नकारना तो नहीं होगा। इन दोनों दुनियाओं का अंतर कम करना होगा। उन्हें वह माहौल देना होगा जिसमें वे अपने आप को बिना किसी झिझक और डर के अभिव्यक्त कर पाएँ और इस नीरस होती जा रही दुनिया में नए रंग भरें। या शायद रंगों की अदला-बदली भी कर दें।

'हो चित्त जहाँ भय शून्य' रवीन्द्रनाथ टैगौर इस बात को लिखते हुए ख़ुद बच्चा सा महसूस करते हैं। जिसे किसी बात का भय नहीं है और वह अपनी अभियक्ति के लिए स्वतंत्र है। बस यहीं से सृजनशीलता विकसित होनी शुरु होती है। जब बच्चे किसी को कलाकृति गढ़ते हैं तो वे बिना किसी की परवाह किए उसे रचते हैं। जैसा वे चाहते हैं बिलकुल वैसा ही।

अभिनय की काया में किरदार

कबीर, सूर और तुलसी की गाथा गायी शेखर ने

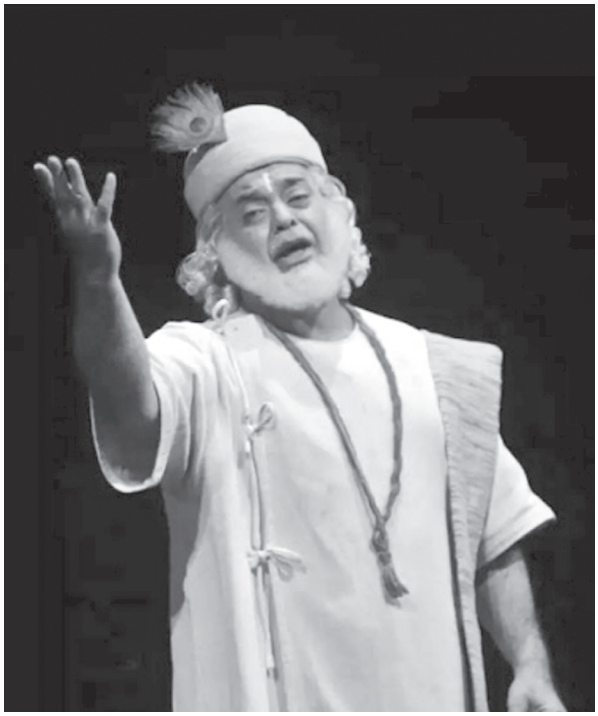

राजनीति के रंगमंच पर मज़हब और इबादत के मानी भले ही नफ़रत, कलह और फ़ासलों का ज़हर घोलते रहे हों लेकिन इधर भोपाल स्थित कलाओं के मरकज़ भारत भवन में कबीर, सूर और तुलसी अमन, एकता और आपसदारी का पैग़ाम लिए अवाम के बीच नमूदार हुए। बहुकला केन्द्र की रंगभूमि पर इन संत कवियों के किरदार को जीवंत करने पद्मश्री से सम्मानित हरफ़नमौला शेखर सेन पेश आए। 20, 21 और 22 मई की शामें बेशक जेठ की जलन में झुलसते अहसासों के लिए ठंडी बयार का झोंका साबित हुईं। दर्शकों का उमड़ता रेला इस बात की भी गवाही बना कि रंगमंच को दर्शकों की और दर्शकों को रंगमंच की ज़रुरत हमेशा बनी रहेगी। यह शेखर के अभिनय कौशल ही नहीं बल्कि उनके साहित्य और ललित कलाओं के प्रति गहरे सरोकार की जीवंत अभिव्यक्ति का विलक्षण प्रमाण था।

शेखर सेन भारत के मौजूदा सांस्कृतिक परिदृश्य में एक ऐसी सर्वमान्य विरल विभूति हैं जिन्होंने कला की रंगभूमि पर अपनी विलक्षण प्रयोगधर्मिता और नवाचार की मिसाल क़ायम की है। उनका व्यक्तित्व शब्द, स्वर, रंग, लय-गति और अभिनय का ऐसा मणिकांचन संयोग है जो रंगमंच पर जीवन को आनंद के उत्सव में बदल देता है। लगभग चार दशकों की रंगयात्रा में शेखर ने सिद्धि और प्रसिद्धि के उन शिखरों को छुआ है जहाँ वे मनुष्यता के लिए आदर्श मूल्यों की तलाश करते हैं। और इस तरह एक सभ्य, सुसंस्कृत, अनुशासित और मर्यादित समाज का सपना देखते हैं। इसी इरादे के साथ शेखर ने रंगमंच से नाता जोड़ा। एक सांस्कृतिक अभियान पर निकल पड़े।

'कबीर' की जुबाँ से इंसानियत का सच

पहली शाम 'कबीर' का मंचन हुआ। नाटक हो या संगीत, कबीर का किरदार या उनका संदेश अनेक रूप-छवियों में यहाँ उजागर होता रहा है लेकिन हर बार उसमें रमने को जी चाहता है तो इसलिए कि कबीर इंसानियत की शाश्वत पुकार हैं। जैसे अपनी ही लौटती हुई आवाज़ों का कारवाँ वहाँ रौशन होता है। शेखर मज़े-मज़े में कबीर की कहानी सुनाते हैं। वे एक साथ चरित्रों और संवादों को कुशलता से साधते हैं और अपनी भरी-पूरी रंग उर्जा को एक व्यापक अनुभव में रुपांतरित करते हैं। घटनाओं-प्रसंगों और क़िस्सों को जोड़ते हुए राग-रागिनियों तथा लोक धुनों का सौंधा स्वाद परोसते हुए अपनी पेशगी को रवानी देते हैं। यहाँ सबक भी है, सवाल भी हैं। कटाक्ष और आनंद भी।

एक रुहानी तार मंच और दर्शकों के बीच जुड़ जाता है। कबीर हमें ज़रुरी लगते हैं जिन्होंने जाति, धर्म, भाषा और नस्ल से उपर उठकर पाखंडों और रुढ़ियों को ललकारा। उनकी निरगुण आवाज सद्भाव के मंच पर खड़े होकर निरंकुश ताक़तों को ललकारती हैं। समरसता का परचम फहराती हैं।

प्रेम और भक्ति की एक ऐसी धारा यहाँ प्रवाहित होती है जिसकी अमृत बूँदों का आचमन कर मन की परतों पर जमा अहंकार की धूल को धोया जा सकता है। शेखर सेन के लिए निश्चय ही यह एक बड़ा और जरूरी रचनात्मक अभियान है। विकृति के बाजार में आज संस्कृति के ऐसे ही शंखनाद की दरकार है।

भक्ति का भाव गाते रहे सूरदास

मंच जैसे सूर का ही चौबारा। ब्रजभाषा की मीठी महक में सूरा की गाथा। कृष्ण भक्ति में वात्सल्य की सरिता और विरह की तीव्रता के स्वर। सूर की आपबीती माने श्याम बीती। भावाकुलता के साथ सजीव होते जा रहे दृश्य। यह 15वीं सदी के श्रेष्ठ कवि सूरदास को जज़्ब करने के क्षण थे। नेपथ्य से सुपरिचित उद्घोषक विनय उपाध्याय के गम्भीर स्वर ने सूर के अभिनेता को आवाज़ दी और पल भर में 'अंतरंग' ब्रज-बरसाने की भूमि में तब्दील हो गया। उजले पीले वस्त्रों में संत कवि की भंगिमा लिए और सुमधुर कंठ से उच्चारित 'अखियाँ हरि दर्शन को प्यासी' को गाते हुए जब सिद्ध गायक और मेधा सम्पन्न अभिनेता शेखर सेन मंच पर उपस्थित हुए तो उन्हें निहारती दर्शकों की आँखों ने मानो सूरदास को ही अपने सम्मुख पाया। मानो उनके कंठ से सूर ही बोल रहे हों। मानो भावनाओं के आरोह-अवरोह में कृष्ण भक्ति के विकल-विह्वल स्वर से ही पुकार रहे हों। ब्रज भाषा में रचे सूर के काव्य-पदों, रचनाओं और संवाद का कल्पनाशील रंग विन्यास शेखर के कंठ माधुर्य और विभिन्न चरित्रों के निबाह से साकार हुआ। लगभग दो घंटों का यह कथा-गान भक्ति पदों, सूर के जीवन की घटनाओं समेत 36 सांस्कृतिक प्रसंगों और स्वामी हरिदास, गोस्वामी तुलसीदास, मीरा बाई, तानेसन, अकबर आदि से हुई ऐतिहासिक मुलाक़ातों-संस्मरणों से होता हुआ अपने अंजाम तक पहुँचा।

इन सबके बीच नाटक की पूरी अवधि में शेखर का आँखों को लगभग बंद कर चपलता और कहीं-कहीं उतनी ही नाजुकता के साथ मंच के दायें-बाएँ चहल कदमी करते, चरित्रों में डूबते-उतराते देखना विस्मयकारी था। ये शाम सगुण भक्ति में लीन होने की थी जहाँ तर्क नहीं, भावाकुल प्रेम था। - **सुदीप सोहनी**

राम की रंग भूमि पर प्रकट भए तुलसी

अंतरंग के मंच पर धीमी सी रोशनी उतरती है और शुरु होता है कालजयी महाकवि तुलसीदास के जीवन पर आधारित सांगीतिक नाटक। रामायण के कई पाठ और रामकथाओं के कई दृष्टांत। वाल्मीकि, भवभूति, कालिदास से लेकर तुलसीदास, कंबन, ज़ेन आदि के राम अलग-अलग हैं। लेकिन राम भोला के राम यानी गोस्वामी तुलसीदास के राम, सब के राम हैं। तुलसीदास की 126 वर्षों की यात्रा 2 घंटे की अवधि में बाँधना यूँ मुश्किल काम है, लेकिन शेखर सेन जैसे निपुण अभिनेता जब किसी चरित्र की काया में प्रवेश करते है तो जीवन प्रसंग सहज हो उठते है। ये कालजयी महाकवि त्रयी की तीसरी और आख़िरी शाम थी। मानो 4 धाम की यात्रा सुकून के मुहाने पर पहुँची। शेखर जब अपने कंठ से राम को गाते हैं तो यह दर्शकों के लिए किसी आत्मिक सुख से कम नहीं होता। यहीं सच्चा 'राम-नाद' है। समय चक्र दर्शकों को कई सदियों तक पीछे ले गया। साक्षात तुलसीदास ही तो थे। शेखर सेन का अभिनय और स्वरों का ताना-बाना आपको राम से मिला देता है। जैसे कभी काशी, कभी अयोध्या में राम के साथ रमने का सौभाग्य मिला हो। - **ऐश्वर्या तिवारी**

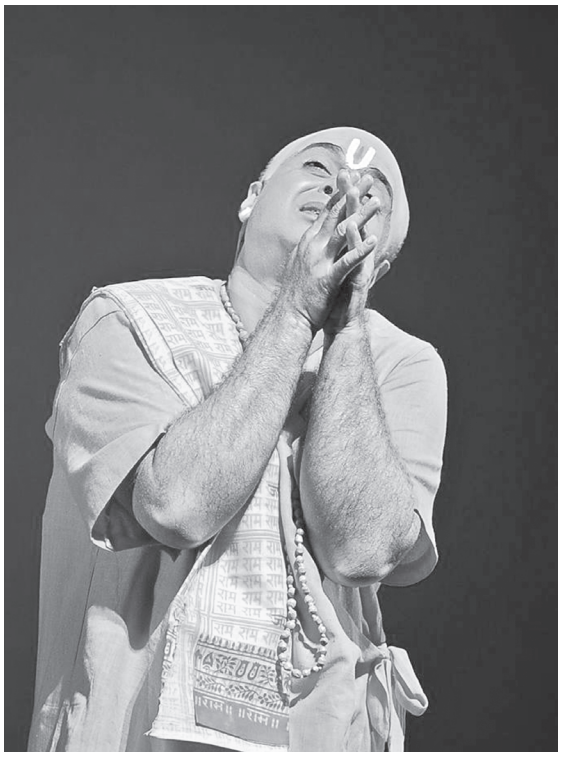

लोक और शास्त्रीय रंग परंपरा की हमजोली

राजस्थानी लोक कथाएँ और 'माटी गाड़ी'

माटी गाड़ी

नाट्य प्रसंग

विचार और मनोरंजन की जुगलबंदी का दिलचस्प ताना-बाना लिए नौजवान पीढ़ी के रंगकर्मियों ने इधर भोपाल के रवीन्द्र भवन में दस्तक दी तो उनकी कलात्मक संभावनाओं को दर्शकों ने खुलकर सराहा। ये टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्रथम सत्र के प्रशिक्षु छात्रों की टीम थी। इस नई रंग उर्जा को दो नाट्य प्रयोगों में देवेन्द्र राज अंकुर तथा संजय उपाध्याय जैसे गुणी, अनुभवी और अग्रणी निर्देशकों ने बेहद ख़ूबसूरती से ढाला। अंकुरजी ने विजयदान देथा की तीन राजस्थानी लोक कथाओं को चुना तो दूसरी ओर संजय शूद्रक के संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिकम्' को 'माटी गाड़ी' के नाम से लोक शैली में रूपांतरित करते पेश आए। 13 और 14 जून को हुए इस नाट्य प्रसंग में लोक और शास्त्रीय परंपरा की हमजोली बेशक दो अलहदा रंग अनुभवों की सौगात बनीं। रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय के कुलाधिपति, कथाकार-कवि संतोष चौबे ने युवा छात्र रंगकर्मियों के अभिनय कौशल की प्रशंसा की। कहा कि भारत का रंगमंच अपनी इन्द्रधनुषी आभा में चली आ रही प्राचीन परंपरा तथा आधुनिक शैलियों के साथ गरिमा पाता रहा है।

पहले दिन का रोमांच 'माटी गाड़ी' के आसपास उमड़ आया। 'माटी गाड़ी' संस्कृत रंगमंच की देशज यात्रा है। ज़ाहिर है कि शूद्रक ने इसे संस्कृत में लिखा। शास्त्रबद्ध सीमाओं में इसे अनेक मंचों पर खेला गया लेकिन प्रयोग की रंगभूमि पर कई पारंपरिक शैलियों में इसका रूपांतरण भी हुआ। यही वजह है कि शताब्दियाँ बीत जाने के बाद भी यह नाटक चिर-नवीन और रोचक बना रहा। ऋषिकेश सुलभ जैसे गुणी लेखक-आलोचक ने 'माटी गाड़ी' में मृच्छकटिकम् को फिर से रचते हुए उसके कथानक को जीवंत किया है। यहाँ एक ओर वसंत सेना और चारूदत्त का गहरा प्रेम है तो दूसरी ओर हिंसा और अराजकता के आसपास मंडराता सत्ता का षड्यंत्र भी है। नाटक से उठती ये आवाज़ें हमें अपने समय के यथार्थ से जोड़ती हैं। यानि एक सिरे पर यह नाटक विचार है तो दूसरे सिरे पर मनोरंजन। इन आवाज़ों में हम अपने समय की धड़कनों को सुन सकते हैं।

निर्देशक संजय उपाध्याय कहते हैं कि 'माटी गाड़ी' मुझे इसलिए प्रिय है क्योंकि यह लोक और शास्त्र को साथ लेकर चलता है। यहाँ संगीत मुझे अपनी माटी से जोड़ता है। नाटक के जीवन में उतरने का साहस और सुविधा देता है।

लगभग दो घंटे की इस प्रस्तुति के विहंगम पर नज़र डालें तो यह नाटक नाट्य विद्यालय के विद्यार्थियों के रचनात्मक कौशल, उत्साह और नाट्य कला के प्रति उनके गहरे रूझान तथा समर्पण का प्रतीक बना। 'माटी गाड़ी' संगीत प्रधान नाटक है लेकिन यह आरोपित संगीत न होकर नाटक के कथानक और संवादों में लय होता दर्शकों के बीच रंजकता जगाता है। संजय उपाध्याय अपनी इसी शैली में निराले हैं।

प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय देश के अग्रणी शिक्षा संस्थान रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय का एक महत्वाकांक्षी प्रकल्प है। इसकी स्थापना का सांस्कृतिक और शैक्षिक जगत में व्यापक स्वागत हुआ है। नाट्य विद्यालय की यह कोशिश है कि नई पीढ़ी के कलात्मक रूझान को दृष्टिगत रखते हुए पारंपरिक, शास्त्रीय और आधुनिक रंग संसार से जुड़ा योजनाबद्ध प्रशिक्षण तथा प्रदर्शन का सिलसिला बने।

रंगमंच अगर प्रयोग की भूमि है, तो यहाँ अनेक संभावनाएँ अपनी आँखें खोल सकती हैं। नया, अनूठा और रोचक इसी यक़ीन के आसपास अपना रूप गढ़ता है और अपने वक़्ती दौर से संवाद करता हुआ एक अनुभव की तरह दर्ज हो जाता है। देवेन्द्रराज अंकुर इसी आग्रह के साथ हिन्दी के रंग पटल पर कहानियों के मंचन की एक नई परंपरा के प्रवर्तक हैं। उनकी रंग दृष्टि में कहानियों को, मंचन के दायरे में लाकर अभिनय तथा संवाद के माध्यम से एक नए नाट्य अनुभव में रूपांतरित होता देखा जा सकता है। यह प्रमाण मिला 'जीवन के रंग, बिज्जी के संग' में।

राजस्थान के लोक जीवन में घुली-मिली कहानियों का ज़खीरा लिए विजयदान देथा ने कला और साहित्य की दुनिया में दस्तक दी। चाहने वालों ने उन्हें प्रेम से बिज्जी कहकर पुकारा। सुखद आश्चर्य कि कठपुतली जैसे लोकमंच से लेकर नाटक और सिनेमा तक विजयदान देथा कलाकारों तथा निर्देशकों के प्रिय लेखक साबित हुए। दूसरे दिन दर्शकों ने इन तीन कहानियों का आनंद लिया। अंकुरजी ने टैगोर नाट्य विद्यालय के लिए बिज्जी की तीन कहानियों को चुना। ये थीं अनेकों हिटलकर, दूजौ कबीर और आदमखोर।

लता मुंशी (कोरियोग्राफर), अनूप जोशी बंदी (प्रकाश संचालन), नरेद्र सिंह राजपूत (रूपसज्जा), प्रवीण नामदेव (मंच सामग्री निर्माण), ऋचा तिवारी (वस्त्र निर्माण), सुजीत कलामंडलम् (युद्धाभ्यास) के अलावा नाट्य विद्यालय के निदेशक मनोज नायर, आनंद पाण्डे, अविजीत सोलंकी, विक्रांत भट्ट आदि का समन्वय सहयोग रहा।

जीवन के रंग बिज्जी के संग

भोपाल की त्रिकर्षि नाट्य संस्था के परचम तले प्रखर रंग हस्ताक्षर और नाट्य गुरु स्व. विभा की यादों को समर्पित नाट्य समारोह विगत अनेक वर्षों से निष्ठा के साथ मनाया जाता रहा है। इस वर्ष लेकिन इसमें एक महत्वपूर्ण और बेहद स्वागतयोग्य बदलाव यह हुआ कि पाँच दिवसीय यह उत्सव राजधानी के रवीन्द्र भवन या अन्य बड़े सभागारों की गरज से परे एक नई रंग दीर्घा में अपनी चहक-महक बिखरेता रहा। नार्मदीय समाज के नव सज्जित सामुदायिक भवन के दूसरे माले पर बड़ी खूबसूरती से तैयार इस अभिनव नाट्य शाला में स्थापित अनुभवी युवा रंगकर्मियों के साथ ही उदीयमान पीढ़ी की सक्रियता क़ाबिल-ए-ग़ौर रही।

इस वर्ष स्व. विभा मिश्र के साथ यह समारोह भोपाल के जाने-माने संस्कृतिकर्मी, नाटककार और फ़िल्म समीक्षक स्व. सुनील मिश्र की यादों को भी समर्पित रहा, जिन्हें क्रूर कोरोना ने काल का ग्रास बना लिया था।

विश्व रंगमंच दिवस 27 मार्च से 31 मार्च तक संपन्न इस समारोह में जिन पाँच नाट्य प्रस्तुतियों का समावेश हुआ वे सभी अपने विषय और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से मुख्तलिफ़ थीं जिसके कारण दर्शकों को हर शाम नयेपन और ताज़गी का अहसास हुआ। आगाज़ त्रिकर्षि की प्रस्तुति 'नेग' से हुआ। अशोक शाह की इस कथा के रुपांतरकार थे देवेश शर्मा और परिकल्पना तथा निर्देशन था मिडिया आंत्रप्रोन्योर एवं अभिनेता-निर्देशक आदर्श शर्मा का।

'नेग' अशोक शाह की एक ऐसी कहानी है जो उनकी आवाज़ बनती है जिन्हें सदियों से नहीं सुना गया है। इस बारे में आदर्श का कहना था कि 'नेग' के उद्देश्य से मेरा मिज़ाज़ मेल खा गया क्योंकि मैं भी मानता हूँ कि रंगमंच की सार्थकता इसी में है कि वो अनकहे को बोल दे। नाटक का एक दिलचस्प पहलू यह भी था कि निर्देशक ने सूत्रधारों के स्थान पर आटे का मटका, हेंगर, चोंगा और माइउमेश जैसी निर्जीव वस्तुओं का रुप लेकर कलाकारों से आंगिक अभिनय के साथ संवाद बुलवाये। सभी कलाकार युवा थे पर अनुभवजनित अनगढ़पन के बावजूद भावनाओं के सम्प्रेषण में कहीं कमी नहीं लगी। अभिनेताओं में खासकर मंगरु (उमेश राय), पहलवान (शिवम् सिन्हा), मंगला देवी (नमन मेहता), मटका-चोंगा (मयंक दीक्षित), ग्रामीणअम् पुरुष (संभ्रांत सिंह), अम्मा (अंजना राय), साहूकार (सृजन सोनी) ने बेहतरीन काम किया। योगेंद्र चंद्रवंशी का संगीत और आदर्श की प्रकाश परिकल्पना ने प्रस्तुति में निखार लाया।

28 मार्च की शाम दूसरी प्रस्तुति राष्ट्रीय चेतना और वीर रस से भरी रही। वरिष्ठ रंगकर्मी नीति श्रीवास्तव के निर्देशन में नाटक 'सैनाणी' का मंचन हुआ जो राजस्थान की जग प्रसिद्ध हाड़ी रानी के अभूतपूर्व बलिदान पर केंद्रित था। बूँदी के हाड़ा राजा की बेटी सलेट कंवर बहुत सुन्दर थी। उसका विवाह चुण्डावत सरदार रावत रतन सिंह से हुआ पर दुर्भाग्य से विवाह की रात ही सरदार चुण्डावत को युद्ध पर जाना पड़ा। संजय श्रीवास्तव की लिखी इस पटकथा पर नीति श्रीवास्तव के निर्देशन में कलाकारों ने मर्मस्पर्शी अभिनय किया। सरदार

मंचराग

नई दीर्घा, नए रंग

त्रिकर्षि का नाट्य समारोह

विवेक सावरीकर

चुण्डावत के रुप में हर्ष दौण्ड और हाड़ी रानी के रुप में अनन्या वर्मा का काम सराहनीय लगा। शेष कलाकारों ने भी अपनी भूमिकाओं के साथ न्याय किया। मुकेश जिज्ञासी की प्रकाश परिकल्पना, संजय श्रीवास्तव का नेपथ्य और आदर्श शर्मा का ध्वनिमुद्रित संगीत प्रभाव, स्वाति वैष्णव का संगीत संचालन प्रभावी रहा। समारोह की तीसरी शाम 29 मार्च को रंगमोहिनी, भोपाल की बहुचर्चित और बहुप्रशंसित नाट्य प्रस्तुति का मंचन विवेक सावरीकर के निर्देशन में हुआ। वृद्धाश्रम में रहने वाले तीन बूढ़ों की अनूठी और प्रेरणास्पद जीवनशैली

को दिखाती इस प्रस्तुति में जहाँ एक ओर घर के बुज़ुर्गों का सम्मान करने और उनको डस्टबिन न समझने की युवाओं को हिदायत दी गयी है वहीं वृद्धों को भी यह नाटक इस बात की प्रेरणा देता है कि उम्रजनित परिस्थिति पर शोक करते रहने की जगह हँसते-मुस्कुराते जीवन जीने की कोशिश करते रहना ही श्रेयस्कर है। सच्चिदानंद जोशी द्वारा अनुदित इस नाटक में संतोष पणिक्कर, राजीव श्रीवास्तव और स्वयं विवेक सावरीकर क्रमशः चौधरीजी, दीवान साहब और मास्टरजी के किरदारों में थे। इनके बीच की चुटीली नोक-झोंक दर्शकों का भरपूर मनोरंजन करती है। लेकिन अंतिम दृश्य में दर्शक अपनी आँखे नम होने से नहीं रोक पाते। खासकर- ओरि चिरैया भूल न जाना और शीर्षक गीत- ये सूखे हुए दरख़्त हैं वाले दृश्य बंध लाजवाब रहे। संजय (श्रेयश मिश्रा), मेम साहब (आसावरी शर्मा), रमेश (वरुण भागवत), गोडबोले (शिशिर लोकरस) सफाईवाली बाई (भारती पंडित) और अण्णा (शरद नाईक) भी छाप छोड़ गए। ज्योति सावरीकर की वेशभूषा, पुनीत वर्मा का संगीत (गीत लेखन और संगीत परिकल्पना- विवेक सावरीकर), अंशुल कुकरेले का मंच आकल्पन और ब्रजेश अनय की प्रकाश सज्जा बेहतरीन थी।

समारोह की चौथी शाम त्रिकर्षि के बैनर तले नाटक 'पतलून' की अच्छी प्रस्तुति हुई। इसका निर्देशन ख़ुद त्रिकर्षि प्रमुख और हाल ही में शिखर सम्मान से विभूषित रंगकर्मी के.जी. त्रिवेदी ने किया। 'पतलून' ख्यातिप्राप्त रंगकर्मी मनीष जोशी बिस्मिल लिखित लोकप्रिय नाटक है जिसमे हास्य- व्यंग्य के ताने-बाने में जीवन की कटु सचाइयों से दर्शक रुबरु होते हैं। पतलून दरअसल मानवीय इच्छाओं के रुपक के रुप में सामने आता है। हमारी इच्छायें जीवन भर हमारा पीछा नहीं छोड़ती और उनको पूरा करने में हम जीवन बिता देते हैं। पर अगर इच्छा ही शेष न रही तो क्या मनुष्य जीवित रह पायेगा? नाटक बहुत गतिशील है और निर्देशक के.जी. त्रिवेदी ने सूत्रधार, भगवान और कोरस के जरिये पतलून (महक नंदा) की व्यथा कथा को बड़ी खूबसूरती से उभारा। दीपक पटेल ने लॉटरीवाला और सूत्रधार के किरदार को जीवंत बना दिया। उनका वाचिक अंग भी दमदार है। बाकी सभी कलाकारों ने अपने पात्रों को अच्छी तरह से निभाया। अभिषेक विश्वकर्मा का संगीत संचयन, सनी सेन का संचालन और आदर्श शर्मा की प्रकाश योजना प्रस्तुतियों के अनुकूल रही।

समापन संध्या में 31 मार्च को नाटक 'डकैत चूहे' का मंचन योगेश योगी के निर्देशन में हुआ। यह रंगरेज रंगसमूह, भोपाल की पेशकश थी। आशीष पाठक लिखित और निर्देशक द्वारा संशोधित-परिमार्जित इस नाटक में अनेक प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से वर्तमान समय की विसंगतियों जैसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के षड्यंत्रों, विस्थापन के दर्द आदि मुद्दों को उभारा गया। नाटक का सर्वाधिक उल्लेखनीय पक्ष इसका प्रबल अभिनय पक्ष और गीत-संगीत रहा। अभिषेक, आशीष, नितीश और भूषण ने अपनी देह बोली और वाचिक अभिनय से अनेक मर्मस्पर्शी दृश्य-बंध रचे। जहाँ तक कथानक की बात है तो 'डकैत चूहे' की कथा की पूर्वपीठिका कुछ अधिक लम्बी लगी। प्रस्तुति में झोपड़ी, चक्र आदि प्रॉप्स का बढ़िया इस्तेमाल हुआ है। योगेश की संगीत परिकल्पना, रवि अर्जुन के हारमोनियम और प्रशांत श्रीवास्तव की ताल संगत पर कोरस गायन बहुत कर्णप्रिय और प्रसंगानुकूल रहा। कुल मिलकर ये एक संभावनाशील प्रस्तुति थी।

वरिष्ठ पत्रकार गिरिजा शंकर के हाथों विभा मिश्र स्मृति नाट्य सम्मान प्राप्त करती हुई रंगकर्मी नीति श्रीवास्तव

इस समारोह में इस वर्ष तीन सृजन कर्मियों को सम्मानित किया गया जिनमे राजीव श्रीवास्तव और श्रीमती नीति श्रीवास्तव को विभा मिश्र स्मृति सम्मान श्रेष्ठ रंगकर्म के लिए और हिमांशु सोनी को सुनील मिश्र स्मृति कला पत्रकारिता सम्मान श्रेष्ठ सांस्कृतिक पत्रकारिता के लिए प्रदान किया गया।

कुल मिलाकर यह नाट्य समारोह भोपाल में नवीन रंगशाला का विकल्प दे गया और इस लोकप्रिय भरम को भी तोड़ गया कि नाटक तो सुसज्जित और वातानुकूलित नाट्य सभागारों में ही प्रभाव छोड़ते हैं।

नई रचनात्मक दिशाओं की तलाश

वनमाली कथा सम्मान समारोह

भोपाल के साहित्यिक-सांस्कृतिक पर्यावरण में एक मुद्दत से छायी वीरानी को छाँटते हुए इस जलसे ने बेशक रचनात्मक सौहार्द का पुनर्वास किया। तीन पीढ़ियों के लेखकों ने मंच साझा किया और कथा साहित्य को केन्द्र में रखकर अपने वक़्ती दौर के बदलावों, फ़िक्रों, चुनौतियों और ज़रुरतों की पड़ताल करते हुए समाधान की दिशाएँ खोजीं। वनमाली कथा सम्मान समारोह इन्हीं आहटों के बीच संपन्न हुआ। इसकी देशव्यापी प्रतिष्ठा विस्तार पाती हुई इस बार विश्वव्यापी हो गयी। वजह, कि आयोजक संस्था वनमाली सृजन पीठ ने विदेशों में लिखे जा रहे श्रेष्ठ हिन्दी कहानी साहित्य को भी सम्मान की ज़द में शामिल किया है। भोपाल के रवीन्द्र भवन, स्वराज भवन तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय के परिसर इस उत्सव की गतिविधियों से गुलज़ार रहे। कहानी पाठ के रोचक सत्रों के अलावा संवाद, विमर्श, संगीत, नाटक और चित्रकला के जुड़ते आयामों ने साहित्य तथा कलाओं की परस्परता को जीवंत किया। साहित्य प्रेमियों के लिए इस अवसर पर नई किताबों की आमद सौग़ात की तरह रही। सामाजिक उद्यमिता संस्थान आईसेक्ट, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय तथा आईसेक्ट प्रकाशन ने मिलकर इस समागम को उत्कर्ष पर पहुँचाया। साठ के दशक में हिन्दी कहानी को नाटकीय मोड़ देने वाले प्रयोगधर्मी लेखक-चिंतक जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली' की विरासत के प्रति यह आत्मीय मान का प्रयोजन है। - संपादक

अनुष्ठान

समारोह का शुभारंभ रवीन्द्र भवन में 15 अप्रैल 2022 को हुआ। प्रथम 'राष्ट्रीय वनमाली कथाशीर्ष सम्मान' से वरिष्ठ समालोचक प्रोफ़ेसर धनंजय वर्मा (उज्जैन) और 'वनमाली राष्ट्रीय कथा सम्मान' से वरिष्ठ कथाकार गीतांजलि श्री (दिल्ली) को शॉल श्रीफल, प्रशस्ति पत्र एवं एक-एक लाख रुपये सम्मान राशि प्रदान कर अलंकृत किया गया। 'वनमाली कथा मध्यप्रदेश सम्मान' वरिष्ठ कथाकार हरि भटनागर (भोपाल), 'वनमाली युवा कथा सम्मान' युवा कथाकार चंदन पांडेय, (बंगलौर), 'वनमाली कथा आलोचना सम्मान' युवा आलोचक वैभव सिंह (दिल्ली), 'वनमाली साहित्यिक पत्रिका सम्मान' दिल्ली से प्रकाशित चर्चित मासिक पत्रिका 'कथादेश' (संपादक हरिनारायण) को प्रदान किये गये। इस बार से वनमाली कथाशीर्ष सम्मान के साथ ही पहली बार दो और श्रेणियों में रचनाकारों को सम्मानित किया गया। पहला 'वनमाली प्रवासी भारतीय कथा सम्मान' वरिष्ठ कथाकार दिव्या माथुर (लंदन) को प्रदान किया गया तथा पहला 'वनमाली विज्ञान कथा सम्मान' वरिष्ठ विज्ञान लेखक देवेंद्र मेवाड़ी (दिल्ली) को प्रदान किया गया। इन रचनाकारों को शॉल-श्रीफल, प्रशस्ति-पत्र एवं इक्यावन-इक्यावन हज़ार रुपये सम्मान राशि प्रदान कर अलंकृत किया गया।

सृजन पीठ के राष्ट्रीय अध्यक्ष वरिष्ठ कवि एवं कथाकार संतोष चौबे ने कहा कि विगत 30 वर्षों से राष्ट्रीय स्तर पर वनमाली कथा सम्मान का आयोजन किया जा रहा है। आज हिंदी के सामने अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनने के बड़े अवसर खुले हैं, इस दिशा में वनमाली सृजन पीठ एवं 'विश्वरंग' टैगोर अंतर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव निरंतर ज़मीनी स्तर से लेकर वैश्विक स्तर तक कार्यरत है। वनमाली सृजन पीठ, भोपाल के अध्यक्ष वरिष्ठ कथाकार मुकेश वर्मा ने कहा कि समकालीन कथा परिदृश्य में लोकतांत्रिक एवं मानवीय मूल्यों की तलाश में जुटे कथा साहित्य की पुन:प्रतिष्ठा में इन सम्मानों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। समारोह की अध्यक्षता करते हुए कथाकार ममता कालिया ने कहा कि वनमाली सम्मानों के लिए राजनीति नहीं है। इन सम्मानों ने भोपाल को साहित्य की वैश्विक राजधानी बना दिया है।

लंदन से आयीं भारतीय कथाकार दिव्या माथुर, साहित्यकार अनिल जोशी, वरिष्ठ आलोचक धनंजय वर्मा, कथाकार गीतांजलि श्री, वनमाली सृजन पीठ दिल्ली के अध्यक्ष लीलाधर मंडलोई, विज्ञान कथाकार देवेंद्र मेवाड़ी, युवा आलोचक वैभव सिंह, युवा कथाकार चंदन पांडेय आदि ने राष्ट्रीय वनमाली कथा सम्मान और वर्तमान साहित्यिक परिदृश्य पर अपने विचार व्यक्त किये। 'विश्वरंग' के सदस्य बलराम गुमास्ता ने आभार माना। समारोह के मंच संचालक वनमाली पत्रिका के संपादक कुणाल सिंह रहे। प्रशस्ति वाचन टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र के निदेशक विनय उपध्याय एवं उद्घोषिका सुनीता सिंह ने किया।

कथा आलोचना का समकाल

वनमाली कथा सम्मान समारोह के दूसरे दिन प्रथम सत्र में रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के शारदा सभागार में 'कथा आलोचना का समकाल' विषय पर संगोष्ठी आयोजित हुई। अध्यक्षता आलोचक विनोद तिवारी (दिल्ली) ने की। आधार वक्तव्य बनारस से आये आलोचक नीरज खरे ने दिया। दिल्ली से आए वैभव सिंह, युवा आलोचक राकेश बिहारी (बिहार) व वरिष्ठ कथाकार पंकज मित्र (झारखंड) ने भी अपने विचार रखे। अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में विनोद तिवारी ने रचना व आलोचना की पारस्परिकता पर बल दिया। संतोष चौबे ने सत्र का समाहार करते हुए कहा कि भविष्य का यथार्थ क्या विज्ञान का यथार्थ होगा? इसको देखे जाने की आवश्यकता है। संचालन युवा आलोचक अरुणेश शुक्ला ने किया।

दृश्यात्मक विश्व में कहानी

दृश्यात्मक विश्व में कहानी पर आधारित वैचारिक सत्र की अध्यक्षता साहित्य अकादमी सम्मान से सम्मानित साहित्यकार नंदकिशोर आचार्य ने की। बीज वक्तव्य रखते हुए संतोष चौबे ने कहा कि आज के समय में हम दृश्यों से घिर चुके हैं। ऐसे समय में कहानी का भविष्य क्या हो यह विचारणीय है। जितेंद्र श्रीवास्तव, अशोक भौमिक एवं प्रियदर्शन ने भी अपने विचार रखे। संचालन कुणाल सिंह ने किया। आभार मुकेश वर्मा ने व्यक्त किया।

विश्वरंग अतिथि-संवाद

टैगोर विश्वविद्यालय के कथा सभागृह में चार अन्य सत्रों का भी आयोजन किया। पहला सत्र ''छत्तीसगढ़ का समकालीन कथा-परिदृश्य'' का रहा। इसमें परिचर्चा के लिए कथाकार सतीश जायसवाल, रमाकांत श्रीवास्तव, आनंद हर्षुल, कैलाश बनवासी और रामकुमार तिवारी शामिल रहे। दूसरा सत्र ''कविता का समकाल'' विषय पर रहा जिसमें वरिष्ठ कवि बलराम गुमास्ता, निरंजन श्रोत्रिय, नीलेश रघुवंशी, कुमार अनुपम और सुधीर सक्सेना ने शिरकत की। तीसरा सत्र ''समकालीन हिन्दी कहानी की भाषा'' विषय पर रहा जिसमें कथाकार पंकज मित्र, मो. आरिफ़, राजेन्द्र दानी, महेश कटारे 'सुगम' और मोहन सगोरिया शामिल रहे। चौथे सत्र का विषय ''कथा के नए केन्द्र और नए मानक'' रहा। इसमें भगवान दास मोरवाल, मनोज पांडेय, अरुणेश शुक्ल, उपासना ने संवाद किया।

टैगोर चित्र प्रतियोगिता के विजेता पुरस्कृत

टैगोर नेशनल पेंटिंग प्रतियोगिता 2020 एवं 2021 के विजेताओं को पुरस्कार वितरण भी किया गया। सभी विजेताओं को ट्रॉफी व इक्यावन-इक्यावन हजार की राशि प्रदान कर अतिथियों द्वारा पुरस्कृत किया गया। वर्ष 2021 के विजेता हर्षवर्धन देवताले पुणे, मंगेशराव काले पुणे, सचिन वनस्थली, सुदीप दास कोलकाता, विकास जलगांव और वर्ष 2020 के विजेता कवलीन कौर दिल्ली, संदीप सुमेरिया सूरत, सचिन निंबालकर पुणे, प्रशांत कुमार नासिक, अनिर्वान शेख कोलकाता रहे।

कविताओं का वृन्दगान

वनमाली कथा सम्मान समारोह की दूसरी शाम रवीन्द्र भवन का मुक्ताकाश मंच हिन्दी कविताओं की सुरभीनी महक से सराबोर रहा। जबलपुर से आए श्रीजानकी बैंड की क़रीब एक दर्जन युवा कलाकारों ने टैगोर की लोकप्रिय कविता- 'एकला चलो रे' और 'फागुन हवा' से लेकर भवानी प्रसाद मिश्र की रचना- 'मैं सन्नाटा हूँ', 'सतपुड़ा के घने जंगल', 'कोयल काली काली पर मीठी है इसकी बोली...'', ''भारतमाता ग्रामवासिनी....'' और सुभद्रा कुमारी चौहान की कालजयी ओजस्वी

पत्रिकाएँ हुई लोकार्पित

इस अवसर पर रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र तथा वनमाली सृजन पीठ की संवाद पत्रिका 'रंग संवाद', साहित्य पत्रिका 'वनमाली' विश्व रंग टैगोर अंतर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव की पत्रिका 'विश्वरंग' तथा इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के ताज़ा अंक भी लोकार्पित हुए। इस क्रम में आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा भोपाल के लगभग 187 कथाकारों की कहानियों को 'कथा भोपाल' के रुप में चार वृहद खंडों में संकलित, संपादित एवं प्रकाशित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। वहीं देश के लगभग 150 लेखकों की विज्ञान कथाओं को 'विज्ञान कथाकोश' के रुप में छः वृहद खंडों में प्रकाशित करने का भी ऐतिहासिक कार्य भी किया गया। महत्वपूर्ण विज्ञान कथाकोश के प्रधान सम्पादक संतोष चौबे एवं सम्पादक सुकदेव प्रसाद है।

पूर्वरंग में कबीर

गायक-रंग संगीतकार राजीव सिंह ने कबीर के निर्गुण पदों का गायन कर शब्द संस्कृति के इस उत्सव में अनूठा रंग बिखेरा। गायन में ''चदरिया झीनी रे...'', ''मो को कहाँ ढूंढे रे बंदे...'' सहित कबीर की उन रचनाओं को चुना जो सदियों से मनुष्यता का संदेश मुखरित करती रही हैं। इसके अलावा ''रंगों से रंग मिले, नए-नए ढंग मिले...'' की मनमहोक प्रस्तुति दी। इस अवसर पर टैगोर कला केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने पूर्व रंग सभा का संचालन करते हुए उत्सव के सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डाला।

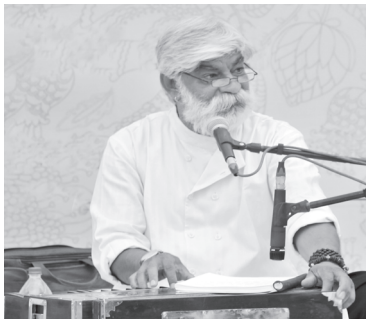

गायक- राजीव सिंह

रंगमंच पर वनमाली की कहानी

वनमाली कथा सम्मान समारोह के अंतर्गत परिकल्पित टैगोर नाट्य महोत्सव में स्वर्गीय जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली' की कहानी ''आदमी और कुत्ता'' का नाट्य मंचन किया गया। नाट्य रूपांतरण, परिकल्पना एवं निर्देशन मनोज नायर ने किया। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि वनमालीजी स्वयं अपनी कहानियों में नाटकीय तत्वों के हिमायती रहे। उनकी रचनाओं का संवादी होना उन्हें संप्रेषण से भरपूर बनाता है। लिहाज़ा रंगमंच पर प्रयोग के लिए भी उनकी कहानियाँ निर्देशकों को प्रिय और सुविधाजनक रही है।

कविता 'बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी...'' को गाकर समारोह को शब्द और स्वर की साहित्यिक गरिमा प्रदान की। महिला कलाकारों के इस वृन्दगान को सुनना हिन्दी कविता की सुरम्य परंपरा से रूहानी तार जोड़ने का अवसर भी था। जानकी बैंड के संस्थापक-संयोजक दविन्दर सिंह ग्रोवर ने कविताओं की पृष्ठभूमि से अवगत कराते हुए बताया कि जानकी बैंड की ये युवा कलाकार भारत की लोक संस्कृति से जुड़े गीत-संगीत के साथ ही हिन्दी की भूली-बिसरी किन्तु अमर रचनाओं को देश भर में गाते-गुनगुनाते एक बड़े सांस्कृतिक अभियान का हिस्सा बन गई है। हारमोनियम, सितार, वायोलिन, तबला, जैंबे और गिटार जैसे भारतीय और पश्चिमी वाद्यों के ताल-मेल से सजी इस प्रस्तुति ने श्रोताओं को साथ-साथ गाने-थिरकने पर विवश कर दिया। विनय उपाध्याय ने कविता और संगीत की परस्परता तथा उसके साथ जुड़े सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलन का हवाला देते हुए श्रीजानकी बैंड की शिरकत को वनमाली समारोह की उपलब्धि बताया।

टैगोर का नाटक 'विसर्जन'

टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक मनोज नायर के निर्देशन में रवीन्द्रनाथ टैगोर के नाटक 'विसर्जन' का नाट्य विद्यालय के विद्यार्थियों ने मंचन किया। नाटक का अनुवाद प्रतिभा अग्रवाल ने किया है। यहाँ धर्म और राज तंत्र के बीच एक बहस है। जीव हत्या को उचित या अनुचित ठहराने के लिए नाटक के चरित्रों में तार्किक संवाद होते हैं। त्रासदी के साथ सार्थक अंत की छवि लिए यह नाटक समकालीन युग में अर्थपूर्ण संदेश देने में सफल होता है। जीव हत्या जैसे क्रूर परंपरा का विरोध करता, नारी सशक्ती में देवी का अस्तित्व खोजता दैवीय और राजधर्म की नई परिभाषा गढ़ते 'विसर्जन' की यह पहली प्रस्तुति रही। नाटक का संगीत निर्देशन-संतोष कौशिक, वस्त्र विन्यास-स्मिता नायर, प्रकाश परिकल्पना-हर्ष वर्धन सिंह राजपूत, अनु श्री जैन, प्रस्तुति सहयोग- डॉ. आनंद पांडे, अभिजीत सोलंकी, विक्रांत भट्ट ने किया। मंच पर अपने जीवंत अभिनय से राजा गोविंद माणिक्य: ऋषभ शर्मा, रघुपति: निशांत पांडे, जयसिंह: गौतम सिद्धार्थ, अपर्णा: हर्षिता सिंह जादौन, गुणवती: अल्पना शर्मा, नयनराय: राजऋर्षि, नक्षत्रराय: उपदेश कुमार, मंत्री: अमरनाथ रेमिन, चांदपाल: राम प्रकाश तिवारी, ध्रुव: सोनिका नामदेव, अघोरी: निखिल बंसल, सबिन भट्टराय, पुरवासी: सुमित सिंह चंदेल, आदर्श ठस्सू, रजत ग्रोवर, कृष्णा, रूपेन्द्र क्षीरसागर, आकाश, सैयदे आलम, राम प्रकाश तिवारी, अमरनाथ रेमिन, सोनिका नामदेव, लखन लाल त्रिपाठी ने दर्शकों को अंत तक बाँधे रखा। नेपथ्य में अनिमेश मिश्रा, लखन लाल त्रिपाठी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अविस्मरणीय कहानी-पाठ

राष्ट्रीय वनमाली कथा सम्मान समारोह के तीसरे दिन सुबह वनमाली कथा सम्मान से सम्मानित रचनाकारों का कहानी-पाठ स्वराज भवन में हुआ। धनंजय वर्मा ने 'आलोचक की दर्द भरी कहानी' का अविस्मरणीय पाठ किया। युवा कथाकार मनोज पांडे ने अपनी कहानी 'जेब कतरे का बयान' का बहुत ही मार्मिक पाठ किया। विज्ञान कथाकार देवेंद्र मेवाड़ी ने विज्ञान कथा का पाठ किया एवं विज्ञान कथा लेखन की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला। हरि भटनागर ने अपनी चर्चित कहानी 'भय' का मर्मस्पर्शी पाठ किया। लंदन से आई वरिष्ठ साहित्यकार दिव्या माथुर की घरेलू हिंसा पर केंद्रित कहानी का पाठ प्रशांत सोनी ने किया। युवा कथाकार उपासना ने शहरी चकाचौंध में गुम होती ज़िंदगी को मार्मिक रुप से रेखांकित करती कहानी का पाठ किया। अध्यक्षता करते हुए ममता कालिया ने कहा कि यह पल कितने अविस्मरणीय है कि कथाकार कथा सुना रहे हैं और सुनने वालों में भी अधिकांश रचनाकार यहाँ मौजूद है। ममता ने आगे कहा कि कहानी कभी ख़त्म नहीं हो सकती। वह हमेशा हमारे भीतर पूरी संवेदनाओं के साथ ज़िंदा रहती है। आभार कथाकार रेखा कस्तवार ने माना।

आईसेक्ट पब्लिकेशन की नई पुस्तकों का हुआ लोकार्पण

स्थानिकता के विश्वरंग के अंतर्गत रवीन्द्र भवन सभागार में आईसेक्ट पब्लिकेशन की नव प्रकाशित पुस्तकों का लोकार्पण अनेक पुस्तक प्रेमियों की मौजूदगी में हुआ।

धनंजय वर्मा की पुस्तक ''यूँ होता तो क्या होता'', ''शशांक की पुस्तक ''सपने सोने नहीं देते'', रेखा कस्तवार की कहानियों का संकलन, विनय उपाध्याय की ''सफ़ह पर आवाज़'', सुधीर सक्सेना की ''सलाम लुई पाश्चर'', डॉ. जयजयराम आनंद की ''अचरज अचरज आनंद'', अशोक कुमार धमेनिया की ''ऋषि रेणु'', राजेंद्र शर्मा की ''ऋण अभी शेष है'', गोकुल सोनी की ''वो तीस घंटे'' और आर.एस. खरे की ''तिमोथी'' का लोकार्पण किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि कवि, चिंतक तथा पूर्व प्रशासनिक अधिकारी मनोज श्रीवास्तव ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि स्थानिकता को रेखांकित करने की दिशा में भोपाल के इतिहास का दस्तावेजीकरण का कार्य किया जाना चाहिए। इसमें भोपाल को एक पात्र के रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है। व्यंग्यकार डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी ने इस अवसर पर अपने उद्‌बोधन में कहा कि अगर आप वैश्विक समंदर बनना चाहते है तो पहले क़तरा बनकर दिखाइए। क़तरे की हैसियत समंदर से बड़ी होती है। साहित्य और जीवन के हरेक पहलू में यह बात बहुत मायने रखती है। कवि सुधीर सक्सेना ने ''सलाम लुई पाश्चर'' के साथ ही विज्ञान केंद्रित कई रचनाओं का पाठ किया। उर्मिला शिरीष, गोकुल सोनी और साधना बलवटे ने साहित्य के पहलुओं पर बात करते हुए ''स्थानिक्ता का विश्वरंग'' विषय पर सारगर्भित वक्तव्य दिए। आईसेक्ट पब्लिकेशन के प्रबंधक महीप निगम ने प्रकाशन संस्थान की रचनात्मक उपलब्धियों का ज़िक्र करते हुए नयी कृतियों की सूचना दी। संचालन बद्र वास्ती ने किया। वनमाली श्रृंखला के अंतर्गत वनमाली कथा सम्मान से सम्मानित रचनाकार प्रभू जोशी, मुकेश वर्मा, ममता कालिया, शशांक, मनीषा कुलश्रेष्ठ, तरूण भटनागर, मनोज कुमार पांडेय, सत्यप्रकाश, कैलाश बनवासी और मनोज रूपड़ा जैसे प्रतिष्ठित लेखकों की दस-दस कहानियों की संकलित पुस्तकों का लोकार्पण किया गया।

चौबे की कहानी ''सतह पर तैरती उदासी'' का मंचन

अंतिम दिन प्रख्यात रंग निर्देशक देवेंद्र राज अंकुर के निर्देशन में संतोष चौबे द्वारा लिखित कहानी ''सतह पर तैरती उदासी'' का मंचन किया गया। रंग प्रयोग की दृष्टि से यह कहानी दर्शकों पर गहरा प्रभाव छोड़ती है। यह ऐसे रिश्तों की कहानी है, जो कभी कहीं नहीं पहुँचते हैं। यहीं ऐसे रिश्तों की नियति होती है। नाटक में तीन लोगों की कहानी को दर्शाया गया है जिसमें एक पत्नी और उसका पति है। इसके अलावा पत्नी की एक सहेली है। कहानी में पति और पत्नी में एक अच्छा रिश्ता देखने को मिलता है। परंतु इसके साथ ही पति को अपनी पत्नी की सहेली से भी प्रेम हो जाता है। कहानी फिर इसके इर्द-गिर्द ही घूमती है। लड़की को किसी ओर से प्रेम है, उसका प्रेमी एक कारखाने में काम करता है। एक लड़ाई के दौरान उसकी गोली मारकर हत्या कर दी जाती है। केस चलता रहता है और इस दौरान कारखाना भी बंद हो जाता है। नाटक में एक ओर मरता हुआ कारख़ाना है और दूसरी ओर चलता हुआ जीवन दर्शाया गया है।

कहानी के रंगमंच के प्रणेता देवेन्द्र राज अंकुर ने इस कहानी को बड़े ही रोचक ढंग से रंग संस्कारित किया है। अमिताभ श्रीवास्तव, अमित सक्सेना, प्रकाश झा, दुर्गेश कुमार, निधि मिश्रा, गौरी देवल एवं शालू गोयल ने अपने श्रेष्ठ अभिनय से दर्शकों के दिलों में अविस्मरणीय छाप छोड़ी। संगीत चयन एवं संगीत संचालन राजेश सिंह ने किया। रंग दीपन राघव प्रकाश मिश्रा का था। सह निर्देशन अमिताभ श्रीवास्तव ने किया। - **संजय सिंह राठौर**

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र की बहुप्रतिष्ठित सांस्कृतिक पत्रिका 'रंग संवाद' के अंक का लोकार्पण साहित्यिक विभूतियों ने मिलकर किया। धनंजय वर्मा, ममता कालिया, गीतांजलि श्री, दिव्या माथुर, संतोष चौबे तथा विनय उपाध्याय।

ख़ुद को गढ़ने की सीख देता है टैगोर का सृजन

'प्रणति पर्व' में गुरुदेव की विरासत पर संवाद

रवीन्द्रनाथ टैगोर अपने समय को पुकारती एक ऐसी भारतीय आवाज़ थे जो निर्भय और स्वतंत्र जीवन जीने और रचने की सीख देते रहे। उनके कला अनुभव का सार यही था कि कागज़ या केनवास पर कुछ गढ़ने से ज़्यादा महत्वपूर्ण खुद को गढ़ना है।

प्रख्यात शिल्पी और चित्रकार देवीलाल पाटीदार ने ये उद्गार टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र द्वारा आयोजित 'प्रणति पर्व' में व्यक्त किये। कला समीक्षक विनय उपाध्याय से हुए इस रोचक और ज्ञानवर्धक संवाद में पाटीदार ने 'टैगोर की कला के आदर्श' की सहज व्याख्या की। रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय के 'कथा सभागार' में टैगोर जयंती के निमित्त हुए इस आत्मीय प्रसंग में कुलपति प्रो. ब्रह्मप्रकाश पेठिया और भाषा, कला तथा मानविकी विभाग की डीन संगीता जौहरी ने शिक्षा, कला, संस्कृति और साहित्य में रवीन्द्रनाथ के गौरवशाली योगदान की चर्चा की। उन्होंने कहा कि नई पीढ़ी के लिए टैगोर का व्यक्तित्व सार्थक और सफल जीवन जीने की प्रेरणा है। आरंभ में मुदित श्रीवास्तव, श्रेया शर्मा और दृष्टि जैन ने प्रकृति, प्रेम, समरसता और आनंद से जुड़ी टैगोर की कविताओं का भावपूर्ण पाठ किया। टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्रशिक्षु छात्रों ने रवीन्द्रनाथ के नाटक 'विसर्जन' के चुनिंदा दृश्यों का मंचन किया। मनोज नायर के निर्देशन में तैयार यह रंग प्रयोग हिंसा के खिलाफ़ प्रतिरोध का स्वर है। इस बीच रवीन्द्र संगीत की सौंधी मधुर स्वर लहरियों ने समारोह को अनूठी रंगत से भर दिया।

नीरज रिछारिया के संयोजन में टैगोर की चित्रकृतियों के प्रदर्शन के साथ शुरु हुए कला संवाद में देवीलाल पाटीदार ने कहा कि रवीन्द्रनाथ ने अपने रचनाकर्म में मन और चित्त की दशा पर जोर दिया है। विनय उपाध्याय के सवालों का जवाब देते हुए पाटीदार ने कहा कि आज के शिक्षा संस्थानों को शांति निकेतन की शैली अपनाने की ज़रुरत है।

गुरुदेव ने यहाँ मुक्त मन से सृजन करने का अनूकूल परिवेश दिया। उन्होंने कहा कि टैगोर के चित्र अपनी तकनीक और विषय को लेकर आतंकित नहीं करते। वो चित्रकार और रसिक के बीच सहज रिश्ता बनाते हैं। यह सब जीवन को सहज ढंग से जीने और सोचने की प्रक्रिया से आता है। इस तथ्य की गवाही में टैगोर के चित्रों को देखा जाना चाहिए। वे पश्चिमी कला मापदंडों की फ़िक्र किए बगैर अपनी चित्रों की रचना करते रहे। पाटीदार ने रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय द्वारा शिक्षा और संस्कृति के मेल-जोल से किए जा रहे रचनात्मक कार्यों की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि नई शिक्षा नीति में जिस पारंपरिक कौशल को अपनाकर व्यक्तित्व विकास तथा व्यावसायिक संभावनाओं के द्वार खोलने की बात की जा रही है, टैगोर विश्वविद्यालय ने इस विचार पर केन्द्रित रहकर अपनी गतिविधियों का विस्तार किया है। श्री पाटीदार ने सुझाव दिया कि टैगोर की कला आदर्श पर लगातार संवाद की दरकार है। विशेषकर नए कला समाज को टैगोर के सृजन को गहराई से देखना समझना होगा।

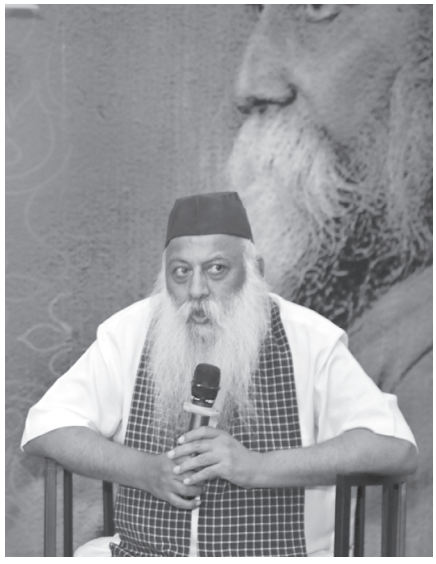

संवाद में देवीलाल पाटीदार

स्टुडियो आरएनटीयू के तकनीकी संयोजन में टैगोर के गीत-संगीत को सुनना रचनात्मक अनुभव था। आरंभ में विश्वविद्यालय परिवार के सभी अधिकारियों, कर्मचारियों, प्राध्यापकों तथा छात्र-छात्राओं ने टैगोर की भव्य प्रतिमा पर पुष्पांजलि अर्पित की।

'हिंदी सिनेमा: इनसायक्लोपीडिया'

श्रीराम ताम्रकर द्वारा संपादित और लिखी पुस्तक 'हिंदी सिनेमा.... इनसायक्लोपीडिया' का हाल ही में मुंबई में समारोहपूर्वक लोकार्पण हुआ। फ़िल्म समीक्षक केंद्रीय मंत्री अर्जुनराम मेघवाल, फ़िल्म अभिनेत्री आशा पारेख, फ़िल्म अभिनेता और निर्देशक चंद्रप्रकाश द्विवेदी की उपस्थिति में यह समारोह मुंबई यूनिवर्सिटी, संस्कार भारती और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र ने संयुक्त रुप से आयोजित किया। इस मौक़े पर बाहुबली, आरआरआर और बजरंगी भाईजान के लेखक केवी विजयेन्द्र प्रसाद सहित हिंदी और मराठी फ़िल्म इंडस्ट्री से जुड़े कलाकार, साहित्यकार और विभिन्न प्रदेशों से आए विद्यार्थी भी मौजूद थे।

'हिन्दी सिनेमा इनसायक्लोपीडिया' में हिंदी सिनेमा के 1300 से ज़्यादा कलाकारों, संगीतकारों, निर्देशकों का परिचय है। साथ ही भारत में संचालित हो रहे फ़िल्म संस्थानों के गठन एवं गतिविधियों का संक्षिप्त परिचय, राष्ट्रीय पुस्कार प्राप्त फ़िल्मों की सूची, ऑस्कर अवॉर्ड के लिए भारतीय फ़िल्म प्रविष्टियाँ, इंडियन पेनोरमा की फ़िल्में, 1827 से 2018 तक की टाइमलाइन, पद्म अलंकार, सिनेमा विधा से जुड़ी जानकारियों को दिया गया है। हिंदी में इस तरह की जानकारियों को जुटाने का यह विश्व में शायद पहला और अनोखा प्रयास है।

श्रीराम ताम्रकर ने वर्षों तक फ़िल्म पत्रकारिता की और देवी अहिल्या विश्वविद्यालय में भी सिनेमा को विषय के रुप में पढ़ाया। उनके अनेक आलेख, साक्षात्कार, फ़िल्म समीक्षा देश के कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। हिंदी सिनेमा.... इनसायक्लोपीडिया पुस्तक श्रीराम ताम्रकर का सपना थी। हालाँकि यह पुस्तक उनके सामने जारी नहीं हो पाई, लेकिन वे ऐसा संदर्भ ग्रंथ दे गए हैं जो आने वाले समय में सिनेमा के विद्यार्थियों, शोधार्थियों, लेखकों के काम आता रहेगा। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक का मूल्य 900 रुपये है और इस संस्थान की वेबसाइट से यह पुस्तक प्राप्त की जा सकती है। - **समय ताम्रकर**

लैंडस्केप पेंटिंग पर वर्कशॉप

लैंडस्केप पेंटिंग के नियमित अभ्यास से आप हमेशा तरोताज़ा और ऊर्जावान महसूस कर सकते हैं। ये बात लैंडस्केप आर्किटेक्ट और स्कूल ऑफ़ प्लानिंग एंड आर्किटेक्चर की फ़ैकल्टी सोनल तिवारी ने लैंडस्केप पेंटिंग वर्कशॉप के समापन में कही। उन्होंने कहा कि लैंडस्केप बनाते समय आपकी आँखें, दिल, दिमाग़ और हाथ में स्वत: स्फूर्त सामंजस्य होता है जिसके उपचारात्मक प्रभाव हैं।

सर्जना एकेडेमी फ़ॉर डिज़ाइन एंड फ़ाइन आर्ट्स द्वारा आयोजित पाँच दिवसीय वर्कशॉप के समापन पर बोलते हुए सोनल तिवारी ने कहा कि प्रकृति चित्रण एक तरह की थेरेपी है जिसका हीलिंग के लिए उपयोग किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि आजकल थेरेपेटिक लैंडस्केप पर बहुत ज़्यादा ध्यान दिया जा रहा है और अनेक रिसर्च से साबित हुआ है कि इससे किसी बीमारी को ठीक होने में अपेक्षाकृत कम समय लगता है।

वरिष्ठ चित्रकार विनय सप्रे ने बताया कि पाँच दिवसीय वर्कशॉप में स्टूडियो और आउटडोर दोनों तरह के सेशंस हुए। वाटर कलर लैंडस्केप का डेमोंस्ट्रेशन किया गया। प्रतिभागियों ने वाटरकलर के अलावा आयल पेस्टल और पोस्टर कलर में भी लैंडस्केप किये।

सर्जना एकेडेमी फ़ॉर डिज़ाइन एंड फ़ाइन आर्ट्स के डायरेक्टर सुनील शुक्ल ने बताया कि लैंडस्केप पेंटिंग वर्कशॉप में स्कूली छात्रों और क्यूरेटर के अलावा डिज़ाइन एवं आर्किटेक्चर स्टूडेंट्स, रिसर्च स्कॉलर एवं सीनियर सिटिज़न भी शामिल हुए।

विश्व नृत्य दिवस पर 'तनिष्का' का प्रदर्शन

रुपहले परदे पर नृत्य का रंग-बिरंगा ताना-बाना लिए राजधानी की उदीयमान प्रतिभा के हौसलों, सपनों और उसकी पंख पसारती दुनिया को देखना यकीनन एक दिलचस्प अनुभव था। विश्व नृत्य दिवस (29 अप्रैल) पर रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के शारदा सभागार में यह सुंदर नाज़ारा फ़िल्म 'तनिष्का' के आसपास सिमट आया।

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र द्वारा आयोजित इस समारोह में फ़िल्म की 10 वर्षीय नायिका भरतनाट्यम नृत्यांगना तनिष्का हतवलने की मौजूदगी विशेष आकर्षण का केंद्र रही। इस डॉक्युमेंट्री फ़िल्म का निर्माण व निर्देशन युवा लेखक व फिल्मकार सुदीप सोहनी ने किया है। 68 मिनट की यह फ़िल्म तनिष्का की प्रतिभा और भरतनाट्यम की शिक्षा और प्रदर्शनों के साथ उसके भीतर की लय की खोज करती है। भाषा, कला और मानविकी विभाग की अधिष्ठाता संगीता जौहरी ने कहा कि हमें अपने भीतर छिपी प्रतिभा को ठीक से पहचानने और सही समय पर उसकी परवरिश करने कि जरुरत है, फ़िल्म 'तनिष्का' यही संदेश देती है। फ़िल्म के निर्देशक सुदीप सोहनी ने इस फ़िल्म के निर्माण, उसके कला पक्ष और उसकी सामाजिक उपयोगिता पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर टैगोर कला केंद्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने विश्व मानचित्र पर भारतीय नृत्यों की अहमियत पर प्रकाश डालते हुए कहा कि नृत्य एक प्रार्थना है। एक उत्सव है। भारतीय संस्कृति को जिन साक्ष्यों के आधार पर पहचाना जाता है उनमें नृत्य सबसे प्रामाणिक माध्यम माने जाते हैं। इस अवसर पर तनिष्का की माँ कलागुरु मंजू मणि हतवलने एवं पिता विशाल हतवलने, विश्वविद्यालय के डीन एकेडमिक्स संजीव गुप्ता आईक्यूएसी के कोर्डिनेटर पद्मेश चतुर्वेदी, मानविकी विभाग की रुचि तिवारी और टैगोर नाट्य विद्यालय के निदेशक मनोज नायर सहित बड़ी संख्या में छात्र-छात्राएँ उपस्थित थे।

'आज के समय में कविता' महावर की पुस्तक पर मंथन

कविता सहज होना ज़रुरी है, तभी आम पाठकों तक पहुँच संभव हो सकेगी। हमारे आसपास, समाज, देश-दुनिया में क्या घटित हो रहा है यदि इससे बेख़बर एयरकंडीशनर कमरे में बैठकर कविताएँ लिखी जा रही हैं, तो यह सब बेमानी हैं। ये उद्‌गार वरिष्ठ कवि एवं प्रशासन अकादमी, छत्तीसगढ़ के निदेशक त्रिलोक महावर ने स्वयं की नई पुस्तक 'आज के समय में कविता' के लोकार्पण समारोह को संबोधित करते हुए व्यक्त किये।

लोकार्पण एवं पुस्तक-चर्चा कार्यक्रम 'विश्वरंग' के अंतर्गत वनमाली सृजन पीठ, भोपाल एवं आईसेक्ट पब्लिकेशन के संयुक्त तत्वावधान में कथा सभागार, रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल में आयोजित किया गया। इस मौक़े पर वरिष्ठ कवि त्रिलोक महावर ने बस्तर के जीवन-संघर्ष, दु:ख-दर्द, जीजिविषा, प्रेम, करुणा, मनुष्यता की पक्षधरता को रेखांकित करती स्वयं की कई उत्कृष्ट कविताओं का अविस्मरणीय पाठ किया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए कवि-कुलाधिपति संतोष चौबे ने कहा कि कविता जब संगीत बन जाती है, तब वह सीधे आपके दिल में उतर जाती है। त्रिलोक महावर की कविताएँ खुरदरेपन के साथ मानवीय संवेदनाओं को सामने लाती हैं।

कथाकार मुकेश वर्मा ने कहा कि त्रिलोक महावर ने दूरदराज के अंचलों को न सिर्फ़ क़रीब से देखा-जाना वरन एक लेखक की दृष्टि से उन्हें अपनी रचनाओं में उकेरा भी हैं। कथाकार शशांक ने कहा कि महावर की पुस्तक में संग्रहित लेख समय-काल और परिस्थितियों को देखने का नया नज़रिया प्रदान करते हैं। कवि बलराम गुमास्ता ने त्रिलोक महावर की कविताओं में बस्तर के ठेठ आदिवासियों के जनजीवन की सहजता को रेखांकित किया। संचालन अरुणेश शुक्ल ने किया। स्वागत उद्‌बोधन महीप निगम, प्रबंधक, आईसेक्ट पब्लिकेशन ने दिया। आभार संगीता जौहरी, प्रतिकुलपति ने व्यक्त किया।

घराने से नहीं, काम से होती है पहचान

कहते हैं सरोद वादक अमान अली ख़ान

सच पूछिए तो भोपाल में मेरा दिल धड़कता है। बड़े तालाब की लहरें, मेरे बचपन की गवाह हैं। यहाँ मैंने लंबा वक्त गुजारा है। श्यामला पहाड़ी के कोने में छुपकर बैठता। अब्बा (उस्ताद अमजद अली) के बाजा बजाने की नकल करता। कोशिश थी कि उंगलियाँ सरोद पर चलने लगे। लेकिन हर बार मायूसी मिलती। ऐसे में मेरी निगहबानी उड़ते परिंदे, रेंगती चींटियाँ और मंद-मंद चलती हवा करती। यहाँ के लबों पर थिरकती मुस्कान का कायल हूँ। साथ ही फुहारों को मौसम सुहाना बनते हुए देखा।

ये यादें मशहूर सरोद वादक अमान अली ख़ान ने एक मुलाकात में साझा की। मुद्दत बाद झीलों की नगरी में उनकी आमद हुई। वे मध्यप्रदेश पर्यटन विकास निगम की जानिब से मुनक्किद 'हृदय दृश्यम' समारोह की एक महफ़िल में सरोज वादन के लिए बुलाए गए थे। इस शाम उन्होंने सरोज पर राग श्री और रागेश्वरी बजाकर मौसम को गुलज़ार किया।

भोपाल में उनके चाचा उस्ताद सरोद रहमत अली खाँ के पास काफ़ी अर्से तक रहे। वो भी मशहूर सरोद वादक थे। अमान की गुफ्तगू का अंदाज़ भी सरोद की नरम लहजे की बंदिश की तरह है। ठहाका भी मध्यम स्वर के तबले की गूँज जैसा है। ग़ौरतलब है कि वे ग्वालियर के शाही ख़ानदान के संगीतकार हाफ़िज़ अली ख़ाँ की प्रसिद्ध बंगश वंशावली की सातवीं पीढ़ी की नुमाइंदगी करते हैं।

रॉक, रैप और फ्यूज़न से क्लासिकल म्युज़िक को ख़तरा होने के सवाल पर अमान का साफ़ कहना है कि क्लासिकल म्युजिक को सीखना और समझना बहुत मुश्किल है। इसके साथ आप नए तर्जुबे तो कर सकते हैं लेकिन इसकी उम्र लंबी नहीं होगी। श्रोताओं को तो राग-रागिनी में ही लुत्फ आता है।

क्लासिकल म्युज़िक को इबादत बताते हुए वे कहते हैं, कि अच्छी मौसिक़ी पर जब तालियाँ गूँजती है तो यक़ीन मानिए नूर बरसने का अहसास होता है। ख़ुद को अभी क्लासिकल म्युज़िक का स्टूडेंट बताते हुए वे कहते हैं कि घराने से कोई पहचान नहीं होती। काम बोलना चाहिए। अगर मौसिक़ी से रुह को तसल्ली न दे सके तो कुछ नहीं बजाया। आज मौसिक़ी नहीं बदली लेकिन मिज़ाज बदल गया। लेकिन ये कुछ वक्त का है।

10-12 साल पहले टीवी पर सारेगामापा म्युज़िक प्रोग्राम में मेज़बानी से अपनी मौजूदगी का अहसास कराने वाले अमान ने फ़िल्मों में मौसिक़ी देने की खातिर अब तक आगे नहीं आने के सवाल पर बोले- देश-दुनिया में होने वाले प्रोग्राम से इतनी फुर्सत नहीं मिल पाती कि इस तरफ सोचे।

- अलीम बज़मी

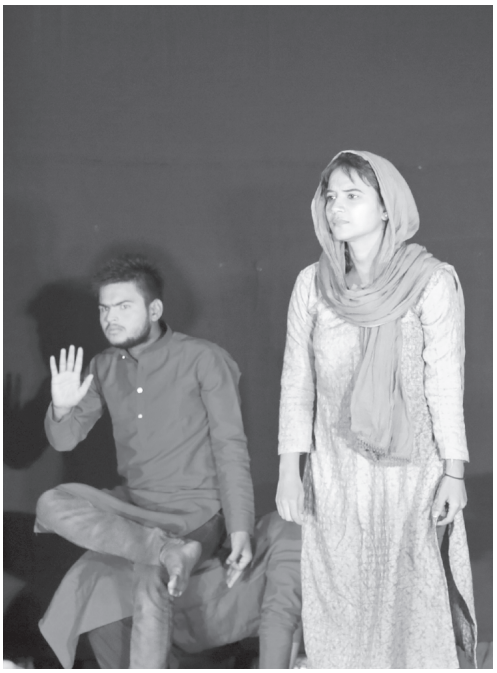

जीवन के रंग, बिज्जी के संग

बेवहज हुई होड़ या प्रतिद्वंद्विता किस तरह बदले की भावना में बदल जाती है और वह एक हिंसा के रुप में सामने आती है कुछ इसी तरह का संदेश देती दिखी कहानी अनेकों हिटलर। कहानी दूजौ कबीर में बताया गया कि कलाकार कभी किसी के बंधन में नहीं रह सकता। उसे कोई भी लोभ या मोह बाँधकर नहीं रख सकता। तीसरी कहानी 'आदमख़ोर' में बताया कि बदले की भावना किस तरह व्यक्ति को पतन में ले जाकर नष्ट कर देती है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में कहानी के रंगमंच के प्रणेता और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व निदेशक देवेन्द्र राज अंकुर के निर्देशन में प्रसिद्ध कहानीकार विजयदान देथा की तीन कहानियों का मंचन किया गया। लगभग 12 दिन की कार्यशाला में अंकुर ने टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के विद्यार्थियों को साथ लेकर देथा जी की तीन कहानियाँ अनेकों 'हिटलर', 'दूजौ कबीर' और 'आदमख़ोर' की प्रस्तुतियाँ तैयार करवाई थी। जिसकी कक्षाभ्यास प्रस्तुति रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय स्थित शारदा आडिटोरियम में की गई। नाट्य प्रस्तुति के दौरान मध्यप्रदेश नाट्य विद्यालय के पूर्व निदेशक संजय उपाध्याय भी मौजूद थे। उन्होंने प्रस्तुति के बाद कहानी के रंगमंच और अंकुर कृतित्व पर प्रकाश डाला। नाटक में प्रकाश व्यवस्था आनंद पाण्डेय की थी। प्रस्तुति सहयोग अविजित सोलंकी का था। संचालन नाट्य विद्यालय के समन्वयक विक्रांत भट्ट ने किया।

आषाढ़ का एक दिन

पिछले दिनों अनन्त टेरेंस थियेटर ने मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' प्रस्तुत किया। पुराने रंगकर्मियों को स्मरण होगा कि यह नाटक लिखे जाने के बरसों बाद खेला गया। जब खेला गया तब भी ख़ुद हिन्दी वालों ने उसकी आलोचना की और अंग्रेजी पत्रकारों ने तारीफ़। अंग्रेज़ी रिव्यू पढ़ने के बाद में हिंदी वालों ने भी इस नाटक को अपनाया।

नाटक में मल्लिका का एक काल्पनिक बिम्ब है। ख़ुद मोहन राकेश ने स्वीकारा था कि मल्लिका की बाहरी टूटन उस चरित्र की परिकल्पना का अनिवार्य अंग रही है क्योंकि उसकी आंतरिक अखण्डता रेखांकित होती है।

इस नाटक को लेकर मेरे ज़ेहन में बहुत सारी बातें है जो मैं फिर कभी करुँगा। अलवर प्रवास के दौरान इस नाटक को लेकर मैंने भी मंचित करने का प्रयास किया था। बाद में कुछ कारणों से उसे छोड़ना पड़ा। बहरहाल, इस नाटक के कुछ मंचन देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। नाटक के अलग-अलग प्रदर्शनों में प्रस्तुतिकरण की इतनी विविधता रही है। मुक्ताकाश मंच पर भी अर्थात ऐसी मंच परिकल्पना के अनुसार जो कि नाटककार की परिकल्पना से सर्वथा अलग थी। वरिष्ठ रंगकर्मी प्रांजल श्रोत्रिय ने निर्देशन के साथ ही नेपथ्य की कई जिम्मेदारियों को निभाते हुए प्रस्तुति को सुगढ़ और संप्रेषित बनाया। इस तरह यह प्रस्तुति एक अलग रंग आस्वाद दे गयी। मल्लिका बनीं मोनिका शर्मा ने अपने अभिनय से दर्शकों को प्रभावित किया। विलोम के रुप में अरविंद पोरवाल ने अपनी संवाद अदायगी और भावमुद्राओं से प्रशंसा प्राप्त की।

रोमेन शर्मा कालिदास के चरित्र में दबे-दबे महसूस हुए। अंबिका बनी सुषमा श्रोत्रिय ने अपने छोटे रोल में जानदार अभिनय किया। इन मुख्य पात्रों के अलावा प्रियंगुमंजरी (शिवानी जैन), राजपुरुष (हर्ष जैन), मातुल (संदीप चौधरी, समीर खान) और निक्षेप (आकाश पाराशर) नाटक को प्रभावी बनाने में सफल रहे। कीर्ति राज राठोर एवं आकाश पाराशर का ध्वनि संगीत, सुषमा श्रोत्रिय का वस्त्र विन्यास, अरविंद पोरवाल का मंच निर्माण तथा अनीस कौशल, हर्ष तलरेजा की मंच सामग्री दृश्यानुकूल रही। इस कालजई नाटक को उसकी क्लासिकी के साथ देखना एक सुखद अनुभूति रहा।

'रिश्तों का रंगमंच'

हिंदी में मौलिक नाटकों का अभाव है, इस अभाव की पूर्ति में 'रिश्तों का रंगमंच' नाट्य-कृति एक महत्वपूर्ण कदम है, इन नाटकों में वर्तमान समय की विड़म्बनाओं विद्रूपताओं विसंगतियों पर प्रहार है। वरिष्ठ कथाकार मुकेश वर्मा ने ये विचार रामानन्द तिवारी स्मृति सेवा समिति द्वारा भोजपुर क्लब सभागार में आयोजित सुमन ओबेरॉय की सद्य प्रकाशित नाट्य-कृति के लोकार्पण अवसर पर व्यक्त किये। सुमन ओबेरॉय ने इन नाटकों की सृजन प्रक्रिया पर अपनी बात रखते हुए 'विष और अमृत' नाटक के एक महत्वपूर्ण अंश का वाचन किया। कवि सुधीर सक्सेना ने इन नाटकों की भाषा और शिल्प को महत्वपूर्ण बताया। विशिष्ट अतिथि स्वाति तिवारी ने इन नाटकों को आम आदमी की जिंदगी से जुड़े महत्वपूर्ण नाटक बताया। चर्चित कवि बलराम गुमास्ता ने इस अवसर पर कहा कि संग्रह के नाटक सांस्कृतिक मूल्यों में होने वाले क्षरण को रोकने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। कार्यक्रम का संचालन लेखक घनश्याम मैथिल 'अमृत' ने किया।

गणगौर की गमक

निमाड़ लोक कला एवं संस्कृति केंद्र खंडवा द्वारा पिछली दिनों सीवी रमन विश्व विद्यालय, खंडवा के परिसर में गणगौर उत्सव का आयोजन किया गया। इस अवसर पर निमाड़ के कलाकारों ने रणुबाई और धणियर राजा के गीत गाते हुए आदांजलि व्यक्त की।

लोक कला केंद्र के निदेशक श्रीराम परिहार ने बताया कि इसमें नृत्य गायन और संगीत जितेंद्र बोड़ाना, गणगौर मंडल ग्राम फेफरिया तथा बालिकाओं ने अपने देशज अंदाज़ में प्रस्तुत किया। निमाड़ की पारंपरिक वेशभूषा में इस दल को थिरकते देखना आदिम सुख था। विश्वविद्यालय के छैगांव माखन (खंडवा) स्थित मुक्ताकाश प्रांगण में हुआ यह आयोजन पारंपरिक अनुष्ठान की गरिमा और आनंद से भरा था। इसका उद्देश्य लुप्त होती जा रही लोक कलाओं और परंपराओं पर अनुसंधान कर आस्था व विज्ञान के अनूठे संगम को रेखांकित करना है। ग्राम फेफरिया की पुरुष मंडली द्वारा सफेद धोती-कुर्ता और हाथ में गमछा लेकर रणुबाई की आराधना नृत्य के माध्यम से की गई। उत्सव में बड़वाह (पश्चिम निमाड़) निवासी प्रसिद्ध नर्तक संजय महाजन ने भी गणगौर की लालित्यमयी संस्कृति का रंजनकारी विन्यास बिखेरा।

सप्तपर्णी सम्मान संदीप को

साहित्य को समर्पित रुपांकन के लिए दिए जाने वाला सप्तपर्णी सम्मान 2021 संदीप राशिनकर को दिए जाने का निर्णय लिया गया है। चित्रकार, लेखक, समीक्षक संदीप के रेखांकनों ने प्रमुख पत्रिकाओं और पुस्तकों के आवरण पर हज़ारों की संख्या में प्रकाशित होकर अपनी विशिष्ठ पहचान बनाई है। उनकी कला प्रदर्शनियाँ लंदन, गोवा, मुम्बई, इंदौर आदि शहरों में आयोजित होकर कला प्रेमियों का दिल जीत चुकी है। भव्य म्यूरल्स के सृजन एवम अभिनव प्रयोगों से वे अपना स्थान बना चुके हैं। वे इंदौर में आपले वाचनालय का संचालन भी करते हैं। यह सम्मान मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन, भोपाल की पत्रिका 'समकालीन प्रेरणा' द्वारा स्व.उर्मिला तिवारी की स्मृति में स्थापित किया गया है।

आस्था के रंग अँजोरती है धनैया

मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय भोपाल की 'लिखन्दरा दीर्घा' मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय में गोण्ड समुदाय की चित्रकार धनैया बाई श्याम के चित्रों की प्रदर्शनी 'शलाका 24' का प्रदर्शन किया गया। प्रदर्शित चित्र विक्रय हेतु भी उपलब्ध रहे। प्रदर्शित चित्रों में देवी, धूती, बगुला पक्षी एवं मकड़जाल, बघेसुर देव, बाघ बाघिन, बारहसिंघा समूह, वृक्ष एवं देव स्थान, वृक्ष एवं पक्षी समूह, हिरण समूह, उल्लू एवं कलिहा, करमा नृत्य, कर्म वृक्ष एवं करमा नृत्य, कौवा एवं ककरामल, गाँव घर, तपस्वी, देव मढिया जैसे कई विषय उद्घोटित हुए।

चित्रकार धनैया बाई श्याम वर्ष 1982 में मध्यप्रदेश के ज़िला डिन्डोरी तहसील के ग्राम पाटनगढ़ में जन्मी हैं। बचपन गाँव में ही बीता एवं माता-पिता की आर्थिक स्थिति अत्यधिक कमजोर होने एवं घर परिवार में अधिक संसाधन न होने के कारण बचपन का समय काफ़ी तंगहाली में व्यतीत हुआ। बेहद कठिन समय एवं आर्थिक स्थिति ठीक न होने से अन्य भाई-बहनों की तरह ही धनैया भी कक्षा तीसरी के बाद शिक्षा ग्रहण नहीं कर पायीं। गाँव में माता-पिता खेतिहर मजदूरी करते एवं किसी त्यौहार या अन्य किसी प्रसंग के समय ही इनके घर में कुछ कलात्मक अभिव्यक्तियाँ दिख पाती। इसी समय धनैया अपनी बहनों सहित माँ के साथ घर आँगन को लीपकर ढीग से सजाने का कार्य करने लगती, उसके अतिरिक्त कला का इनके जीवन में बहुत अधिक स्थान नहीं था। धीरे-धीरे धनैया ने बहनों संग माँ से ही मिटटी में काम करना सीखा एवं घरेलु उपयोग एवं आवश्यकताओं के लिए वस्तुएँ बनाने लगी। कम ही आयु में धनैया का विवाह मोहन सिंह से हो गया। विवाह उपरांत भी जब आर्थिक संकट कुछ कम न हो पाए, तब मोहन एवं धनैया ने एक बेहतर भविष्य की कल्पना करते हुए, भोपाल की ओर रुख़ किया और यहाँ आकर पति-पत्नी मजदूरी का कार्य करने लगे।

उस समय यहाँ भोपाल में उनके मामा स्व. जनगढ़ सिंह श्याम जो दुनिया भर में अपनी चित्रकला का लोहा मनवा चुके थे, अपनी देख-रेख में अनेक गोंड युवाओं को चित्रकला के गुर सिखा रहे थे, ठीक इसी समय एक अनूठी चित्र शैली जनगढ़ कलम भी विकसित हो रही थी। धीरे-धीरे जनगढ़ के मार्गदर्शन में धनैया एवं मोहन कुछ चित्र अपने स्वयं के लिए भी बनाने लगे। स्व. जनगढ़ सिंह श्याम इस कलाकार युगल के प्रथम गुरु हैं। धनैया ने लगभग 22 वर्षों की अपनी इस कला यात्रा में दिल्ली, इलाहाबाद, मुंबई सहित देश भर में आयोजित अनेक कला शिविरों, चित्र प्रदर्शनियों में सक्रीय भागीदारी की है। इनके चित्र देशभर की अनेक कला दीर्घाओं, शासकीय एवं निजी संग्रहों में संग्रहीत हैं। धनैया के चित्रों में मुख्य रुप से गाँव की स्मृतियों, त्योहारों, वन्य जीव जगत का मनुष्यों के अंतर्संबंधों का चित्रण होता है। - **विकास तिवारी**

बशीर के एहतराम से भरी शाम

टैगोर विवि के सहयोग से 'छतनारा' का यादगार मुशायरा

छाया: तनवीर अहमद

मई महीने की सातवीं तारीख़ भोपाल शहर के लिये एक यादगार शाम ले कर आई थी। मौक़ा था छतनारा और रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित जश्न-ए-बशीर बद्र का। छतनारा भोपाल की एक कला संस्था है जो अपने आर्ट होम और निरंतर नवाचार के लिए जानी जाती है। डॉ. बशीर बद्र जैसे अलहदा तबीयत और तासीर के दिग्गज शायर के सम्मान में आयोजित इस जश्न के मौक़े पर राष्ट्रीय मुशायरे का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में जहाँ एक तरफ देश के अलग-अलग कोनों से शायर आमन्त्रित थे, वहीं फ़ेहरिस्त में भोपाल की नुमाइन्दगी करते हुए कुछ चर्चित नाम भी मौजूद थे। मुशायरे में नाज़िम की भूमिका में, शहर की मुस्कुराती आवाज़ों में से एक जनाब बद्र वास्ती थे। मध्य प्रदेश उर्दू अकादमी की निदेशिका, नुसरत मेहदी सदारत फरमा रहीं थी। इनके साथ ही अब्बास क़मर, निवेश साहू, आशू मिश्रा, अज़हर इक़बाल, स्वप्निल तिवारी और अभिषेक वर्मा मंच पर मौजूद रहे।

कार्यक्रम में आमंत्रित अतिथियों में रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय से टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र के निदेशक विनय उपाध्याय, एलआईसी से श्रीपति वर्मा, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पलाश सुरजन जैसे गणमान्य व्यक्तित्व उपस्थित थे। इस मौक़े को और भी ख़ास बनाने के लिये डॉ. बशीर बद्र साहब के परिवार से डॉ. शाज़िया हुसैन ने भी जश्न में शिरकत की। इस मुशायरे में उपस्थित श्रोताओं में हर वर्ग और उम्र के लोग थे। युवाओं का बड़ी संख्या में शिरकत करना अदब के प्रति नए भरोसे की ताईद कर रहा था।

कार्यक्रम की शुरुआत करते हुए अभय शुक्ला ने बताया कि छतनारा में लगातार साहित्य से जुड़ी बातें चलती रहती हैं। डॉ. बशीर बद्र साहब उर्दू की दुनिया के ऐसे सूरज हैं जिनका हर शेर आपको रोशनी देता है। उनकी शायरी इस तरह से भी ख़ास रही है कि वे अपनी तरह के नए बिम्ब भाषा में ले कर आए। ये एक तरह से हमारी तरफ से उनके लिए ट्रिब्यूट देने जैसा है। बद्र वास्ती ने मंच सम्भालते हुए शायराना अंदाज़ में कार्यक्रम आगे बढ़ाया। बशीर बद्र साहब के लिए लिखा प्रशस्ति पत्र पढ़ कर सुनाया। - **निशांत उपाध्याय**

पीढ़ियों के द्वन्द्व की पटकथा

धारावाहिक

रंगमंच और सिनेमा के प्रसिद्ध अभिनेता राजेन्द्र गुप्ता एक नए धारावाहिक 'जगन्नाथ और पूर्वी की दोस्ती अनोखी' में नायक के रुप में अभिनय कर रहे हैं। इसकी सारी भावभूमि भारतीय संस्कारों से निर्मित है। सोचा कि बीस वर्षों के अन्तराल को मुझे इस धारावाहिक के माध्यम से पाटना चाहिए। मन हुआ, देखा जाए कि व्यावसायिक आलोचना के इस निरंकुश दौर में सत्तर वर्ष से अधिक आयु का कोई कलाकार किस तरह किसी धारावाहिक का नायक बन सकता है! 'जगन्नाथ और पूर्वी की दोस्ती अनोखी' को मैंने राजेन्द्र गुप्ता के कारण देखना आरम्भ किया था। अपनी अभिनय-क्षमता के कारण वे पूरे धारावाहिक के केन्द्र बने हुए हैं। यहाँ वे वृद्ध किरदार जगन्नाथ मिश्रा के रुप में है।

'जगन्नाथ और पूर्वी की दोस्ती अनोखी' के पहले ही अंक ने हृदय जीत लिया। क़िरदार भीतर तक उतर गए। तीसरे-चौथे अंक तक आते-आते हृदय इस व्याकुलता से भरने लगा कि कहानी में अब आगे क्या

होगा! यह व्याकुलता अब भी बनी हुई है, जबकि इसके पचास अंक मैं देख चुका हूँ। यह व्याकुलता धारावाहिक में पिरोई गई घटनाओं से जुड़ने के कारण ही नहीं है, बल्कि उसके किरदारों से जुड़ने के कारण भी है। घटनाएँ नई नहीं हैं, लेकिन कथा में उनका गुंफन इस तरह किया गया है कि वे नई लगें। नवीनता का यह आनन्द ही किसी कहानी में प्राण फूँकता है। इसके अलावा किरदारों से निसृत होती सांस्कृतिक आभा दर्शकों में उनके भारतीय होने का गर्व भी भरने लगती है। कथा जिस नगर में मंचित की जा रही है, वह बनारस है।

रजिता शर्मा की इसलिए तारीफ़ की जानी चाहिए कि उन्होंने बड़ी कुशलता से एक आम भारतीय परिवार की सांस्कृतिक अन्तर्धारा को मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति दी है। उन्हें अगर होली, रामनवमी या अन्य उत्सवों को अपनी कहानी में समाविष्ट करने की जरुरत पड़ी, तो उन्होंने यह काम पर्याप्त धैर्य व दूरदर्शिता से किया। युसूफ़ फारुक अंसारी का निर्देशन उत्कृष्ट है। इस संसार में रिश्ते वे ही नहीं होते, जो ख़ून से तय होते हैं। रिश्ते वे भी होते हैं, जो प्रेम से तय होते हैं। देखा जाए, तो रिश्ते प्रेम से ही तय होते हैं। जगन्नाथ का उसके दोस्त वीरेन के साथ जो रिश्ता है, वह खून के रिश्ते से कहीं बढ़कर है।

इस प्रशंसा का अर्थ यह बिलकुल नहीं है कि इस बीच अच्छे धारावाहिकों पर काम ही नहीं हुआ। निश्चित रुप से सभी धारावाहिक अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाने के लिए नहीं बनाए गए होंगे, लेकिन उन्हें देखने का मेरा कोई अनुभव नहीं है इसलिए मैं नहीं कह सकता कि उनमें क्या अच्छा था..? चूँकि 'जगन्नाथ और पूर्वी की दोस्ती अनोखी' मैं देख रहा हूँ, इसलिए अधिकार पूर्वक कहता हूँ कि देश के परिवारों में इसे देखा जाना चाहिए। जगन्नाथ, कुसुम, आलोक, दीपा, काशी और पूर्वी के चरित्रों का गहराई से अध्ययन करें, तो यह समझ में आता है कि 'जगन्नाथ और पूर्वी की दोस्ती अनोखी' से हम आधुनिक युग की दो पीढ़ियों के टकराव और समन्वय को समझ सकते हैं। धारावाहिक देखते समय और उसके बाद भी आप राजेन्द्रजी के साथ द्रवित होते हुए अपने जीवन में घट रही घटनाओं का बार-बार स्मरण करते हैं। यही उनके अभिनय की ताकत है।

- सुरेन्द्र डी. सोनी

आवाज़ की परवाज़ कौशिकी

जब वह सुर छेड़े है तो लगे है शबाब पर आया पलाश उस पर मोहित हो चला है। जब वह बंदिश की बनावट पेश करे है तो लगे है कोई रुपसी बनाव-सिंगार कर बारादरी में आ बैठी है। जब वह सरगम सजाए है तो लगे है जैसे गाना बच्चों का काम है। वह सुर साधे है तो महसूस होने लगे जैसे दक्षिणेश्वर की काली के सामने किसी तपस्विनी ने ध्यान धर लिया है।

जी ये पटियाला घराने की स्वर कोकिला कौशिकी चक्रवर्ती है। सानंद न्यास की नव वर्ष बेला में सजी महफ़िल का रस परवान चढ़ाने वे डीएवीवी सभागार में नमूदार है। वे जब मंच पर आ बिराजी हैं तो उमस, सभागार में भीड़, औपचारिकताओं का लम्बा सिलसिला भुला कर श्रोता संगीत में तल्लीन हो अपनी सुधबुध भूल चुका है। पटियाला घराने के उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ाँ का जन्मदिन है सो कौशिकी का गाना अपने दादा गुरु को ख़िराज-ए-अकीदत पेश करता सुनाई देता है। यमन में उनका मन रम गया है और एक ताल, झपताल और तीन ताल में पगी बंदिश में अपना तिलिस्म दिखा रही हैं। बोल में सरगम, सरगम में तान, तान में गमक और उसमें रंग जमाती मुरकियाँ कौशिकी की कारीगरी का जलवा बिखेर रही है।

जब कौशिकी चक्रवर्ती गा रही हों तब आपके बस में सिर्फ़ ये है कि अपने कान उसकी आवाज़ के सामने गिरवी रख दें। तानों की चपलता, मानसिक चैतन्यता, भरपूर रियाज़ साबित करता है कि कौशिकी मौसिकी के मंच की महारानी है। वह क्या गा रही है इस पर अपना वक्त ज़ाया मत कीजिए क्योंकि उसने वक़्त को ही सुरीला बना दिया है। हारमोनियम पर अजय जोगलेकर, सारंगी पर मुराद अली का दमदार साथ कौशिकी के गायन का गाढ़ा रंग था। यशवंत वैष्णव ने तबला संगति से भरपूर दाद बटोरी है। भारतीय नववर्ष के पहले दिन सानंद न्यास का न्योता यदि श्रीखंड था तो कौशिकी का गाना उसमें केसर की यादगार सुगंध बन गया। - **संजय पटेल**

समीक्षा कार्यशाला

सोचना और लिखना ऐन्द्रिक कार्य है जिसमें ज्ञान और भाव इकट्ठे चलते हैं। क़लम को चलाना सबसे ज़रुरी है क्योंकि इसी से सारी शुरुआत होती है। विख्यात आलोचक और दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व समकुलपति सुधीश पचौरी ने उक्त विचार हिन्दू कालेज दिल्ली में आयोजित एक दिवसीय कार्यशाला पुस्तक समीक्षा 'क्या, क्यों और कैसे' में व्यक्त किए। आयोजन हिंदी विभाग और आइक्यूएसी के संयुक्त तत्वाधान में हुआ जिसमें देश भर से सवा सौ से अधिक प्रतिभागियों ने प्रत्यक्ष और ऑनलाइन माध्यम से भागीदारी की। पचौरी

ने फ़िल्मों का उदाहरण देते हुए कहा फ़िल्म देखने के पश्चात फ़िल्म के बारे में बनी हमारी समझ ही समीक्षा है। समीक्षा के लिए किसी भी पाठ के मानी पाठ के भीतर से ही खोजे जाने की ज़रुरत पर बल देते हुए उन्होंने कहा मीडिया ने आज आलोचना को दरकिनार कर दिया है।

कार्यशाला का उद्घाटन सुविख्यात लेखक और पत्रकार विष्णु नागर ने किया। उन्होंने कहा कि समीक्षा और आलोचना को अकादमिक दुनिया के बंद दायरों से बाहर निकाल कर ही स्वस्थ रचनात्मक वातावरण बनाया जा सकेगा। हिंदी विभाग के प्रभारी श्री राय ने कार्यशाला की प्रस्तावना रखते हुए पुस्तक समीक्षा की सैद्धांतिकी और व्यावहारिकी की नवोन्मेषी स्थापना पर बल दिया। कार्यशाला के दूसरे सत्र में अंबेडकर विश्वविद्यालय में हिंदी के आचार्य गोपाल प्रधान ने 'कथा समीक्षा की चुनौतियाँ' विषय पर समीक्षा और साहित्य की सृजनात्मकता की व्याख्या करते हुए कहा कि सत्ता की आलोचना करने का कोई ना कोई रचनात्मक तरीक़ा रचनाकार निकाल ही लेता है। एक अन्य सत्र में युवा आलोचक और 'बनास जन' के सम्पादक पल्लव ने कथेतर विधाओं की समीक्षा पर व्याख्यान दिया।

'हस्ताक्षर' विलक्षण प्रयोग

हस्ताक्षर करने का सभी का अपना विशिष्ट अंदाज़ होता है। साहित्य भी अपने अंदाज़, अपने विशिष्ट शैली, अपने हस्ताक्षर के निर्माण की प्रक्रिया ही है। इस दृष्टि से 'हस्ताक्षर' पत्रिका विलक्षण प्रयोग है। यह बात हिंदी साहित्य सभा, हिंदू विभाग, हिंदू कॉलेज दिल्ली में 'हस्ताक्षर' पत्रिका के लोकार्पण के अवसर पर आयोजित 'हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता और हमारा समय' विषय पर परिसंवाद सत्र में प्राध्यापक अपूर्वानंद ने कही। उन्होंने पत्रिकाओं और साहित्य के बीच के अंतरसंबंधों पर प्रकाश डाला।

पत्रिका 'हंस' के संपादक संजय सहाय ने किसी एक फ्रेम में न बंधकर, लेखन में नए-नए प्रयोग करने पर बल दिया। उन्होंने कहा कि जो रचनाकार जितना अधिक परिवर्तन, जितना अधिक प्रयोग करता है, वह उतना ही बड़ा रचनाकार होता है। 'हंस' की ही रचना यादव ने पठन, लेखन, प्रकाशन और वितरण के क्षेत्र में विद्यमान समस्याओं और उनके समाधान पर बात की।

'हस्ताक्षर' की संपादक रचना सिंह और प्रभारी रामेश्वर राय की उपस्थिति में पत्रिका के 22-23वें संयुक्तांक का लोकार्पण हुआ। कवि नीलेश रघुवंशी की हस्तलिपि में कुछ कविताओं सहित इस अंक में 'घर' विषयक कविताओं का एक चयन मुख्य आकर्षण है।

– **पल्लव**

दूर तो है पर दूर नहीं है

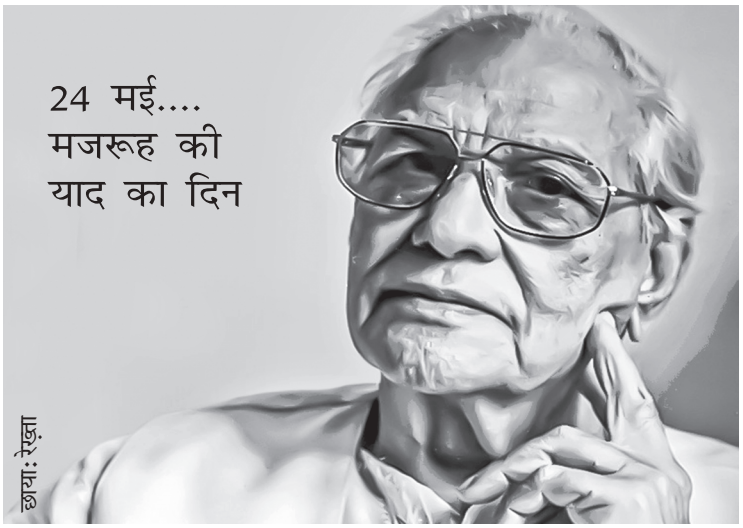

गीतकारी की दुनिया में मजरूह एक चमकते सितारे रहे हैं, बल्कि ये कहूँ कि वो गीतकारी के स्कूल के ध्रुव-तारे हैं। मजरूह की सबसे बड़ी ख़ासियत है किरदारों को उनके परिदृश्य के मुताबिक ज़बान देना।

तभी तो 'चलती का नाम गाड़ी' का 'मनु' गाता है- 'गीत सुना सकता हूँ दादरा/गिन के पूरे बारह मात्रा....पाँच रुपैया बारह आना'। यही मजरूह 'ज़माने ने मारे जवाँ कैसे-कैसे' लिखते हैं। यही मजरूह लिखते हैं- 'बने हो एक ख़ाक से तो दूर क्या, क़रीब क्या, लहू का रंग एक है, अमीर क्याा, ग़रीब क्या'। ज़िंदगी की राहों में मजरूह कई तरह से रोशनी दिखाते हैं- 'रुक जाना नहीं तू कहीं हारे के/काँटों पर चलकर ही मिलेंगे साये बहार के'। मजरूह आपकी मुट्ठी सितारों से भर देते हैं। मजरूह रोशनी का एक कभी ना ख़त्म होने वाला स्रोत है- 'लंबी सही दर्द की राहें, दिल की लगन से काम ले/आँखों के तूफ़ाँ को पी जा, आहों के बादल थाम ले/दूर तो है पर दूर नहीं है नज़ारों की मंजिल राही/कभी तो मिलेंगी बहारों की मंजिल राही'। किरदार के हिसाब से लिखने वाले मजरूह ने लिखा- 'हम तुमपे इतना डाइंग/जितना सी में पानी लाइंग/आकाश में पंछी फ्लाइंग/भंवरा बगियन में गाइंग'।

मजरूह 'मेरे दिल में कौन है तू कि हुआ, जहाँ अँधेरा/वहीं सौ दिये जलाए तेरे रूख़ की चाँदनी ने/कई ख़्वाब देख डाले वहीं मेरे बेख़ुदी ने भी लिखते हैं। 'दोस्ती' के एक गाने में वो लिखते हैं- 'इस जहाँ के लिए धरती माँ के लिए/शिव का वरदान हूँ मैं तुम्हारी तरह/जाने वालों जरा मुड़के देखो मुझे'। मजरूह एक गाने में लिखते हैं- 'सुनो कहना हमारा, अमीरी है सितारा/ग़रीबी एक आँसू'। यही मजरूह किसी और गाने के सवाल-जवाब में लिखते हैं- 'आँचल में क्या जी/अजब-सी हलचल'। ये उनकी सूझबूझ और लफ़्ज़ों की कारीगरी की मिसाल है। सस्पेन्स से भरे 'ज्वेल थीफ़' के क्लाइमेक्सज में वो शब्दों की लड़ी सजाकर कहते है- 'रात काली नागन सी हुई है जवाँ/हाय दैया किसको डसेगा ये समाँ'। मजरूह अंधेरे से भरे समय की आवाज़ बनकर कहते हैं- 'किसलिए मिल-मिल के दिल छूटते हैं/किसलिए बन-बन महल टूटते हैं/पत्थर से पूछा शीशे से पूछा/ख़ामोश है सबकी जबाँ'। मजरूह को कहना पड़ता है- 'मजरूह लिख रहे हैं वो अहले-वफ़ा का नाम, हम भी खड़े हुए हैं गुनहगार की तरह'। मजरूह ने घर के 'बिगड़े बच्चों' के लिए लिखा- 'वो तो है अलबेला/हज़ारों में अकेला/सदा तुमने ऐब देखा/हुनर तो ना जाना'। मजरूह हमारी रूह हैं।

– **यूनुस ख़ान** की फेसबुक वॉल से

रंगमंच और रुपहले परदे पर अपनी अदाकारी के अलहदा नक़्श उकेरने वाले राजीव वर्मा की कुछ बरस पहले मुंबई से अपने गृह नगर भोपाल वापसी हुई तो नाटकों के आसपास फिर उन्होंने रुख़ किया। अपने रंग समूह भोपाल थिएटर के लिए उन्होंने लगातार नाटकों का निर्देशन किया। मंचन का लगातार सिलसिला बना हुआ है। एक यादगार कड़ी इस बीच जुड़ी नाटक 'चौथी सिगरेट' की। 27 मई को भोपाल के शहीद भवन में इसकी प्रस्तुति हुई तो सभागार दर्शकों से खचाखच भरा था। नाटक का आलेख योगेश त्रिपाठी का है। मंच से नेपथ्य तक कलाकारों की बहुत अच्छी टीम राजीवजी ने तैयार की। कथानक के अनुकूल कल्पनाशील निर्देशन में दिनेश नायर का मंच प्रबंधन, कमल जैन का रंग दीपन और मॉरिस लॉजरस का संगीत, नाटक को प्रभावी बनाता रहा। रीता वर्मा, प्रवीण महूवाले और राजीव श्रीवास्तव जैसे मुख्य क़िरदारों के सशक्त अभिनय ने आख़िर तक दर्शकों को बांधे रखा।

संवाद-कला की पाठशाला

जबलपुर में 'विवेचना' की रचनात्मक पहल

उद्घोषणा और संवाद की कला जैसे महत्वपूर्ण विषय पर जबलपुर की सांस्कृतिक संस्था विवेचना ने जब दो दिनी कार्यशाला का ताना-बाना बुना तो पहली सूचना पर ही प्रतिभागियों का उत्साह उमड़ आया। एक और दो मई के दरमियान सुबह से शाम तक अलग-अलग सत्रों में शब्द, ध्वनि, अभ्यास, आचरण, अनुशासन, संस्कार, स्मृति और जीवन के प्रति विराट और गहरे दृष्टिकोण से जुड़े दर्शन, व्याकरण और व्यवहार पर बहुत ही बुनियादी और रोचक बातें हुईं। संस्कारधानी के अग्रणी और सक्रिय रंगकर्मी विवेचना के सूत्रधार हिमांशु राय तथा गुणी संगीतकार-बांसुरी वादक सुरपराग के संस्थापक मुरलीधर नागराज की पहल पर आयोजित संवाद की इस पाठशाला में जबलपुर की बुजुर्ग और अनुभवी उद्घोषिका साधना उपाध्याय, आकाशवाणी महानिदेशालय के सेवानिवृत्त वरिष्ठ अधिकारी राजीव शुक्ल, विविध भारती मुंबई के लोकप्रिय उद्घोषक युनुस ख़ान और ममता सिंह के साथ ही भोपाल से वरिष्ठ उद्घोषक तथा टैगेर विश्व कला केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय बतौर अतिथि वक़्ता तथा मार्गदर्शक आमंत्रित थे।

उद्घोषक युनुस-ममता

रचनात्मक सौहार्द के बीच उद्घोषणा जैसे रोचक विषय पर हुए संवाद ने इस विश्वास को गहरा किया कि अपनी अनेक जिज्ञासाओं तथा सवालों के बीच प्रतिभागी कथ्य, भाषा तथा संप्रेषण की चुनौतियों को ठीक से देखना-समझना चाहते हैं। यह भी कि उद्घोषणा अपने बहुआयामी स्वरुप में एक गंभीर दायित्व के साथ किये जाना वाला कार्य है। महज़ ग्लैमर और मनोरंजन तक सीमित रहकर इस कला की गुणवत्ता को नहीं समझा जा सकता। इस आयोजन के साथ जुड़ी रहीं जबलपुर के दिवंगत उद्घोषक प्रदीप दुबे की यादें।

यूनुस ने कहा कि उद्घोषक का साहित्य, संगीत और नृत्य से गहरा नाता होना चाहिए। आवाज़ के गुणों पर ममता सिंह ने चर्चा करते हुए कहा कि आवाज़ अच्छी और स्पष्ट होना चाहिए पर बेस वाली आवाज़ की हमेशा ज़रुरत नहीं है। उन्होंने रेडियो कार्यक्रमों से जुड़े अपने अनुभव भी सुनाए। कहा कि रेडियो से उद्घोषणा कला के सबक सीखे जा सकते है।

यूनुस व ममता सिंह ने प्रतिभागियों से अभ्यास भी करवाये। राजीव कुमार शुक्ल ने आकाशवाणी और उससे इतर लंबे अनुभव पर बात की। अभ्यास सत्र का संचालन मुरलीधर नागराज ने किया। शुरुआत स्वर्गीय प्रदीप दुबे के चित्र पर पुष्पांजलि से हुई। हिमांशु राय ने बताया कि विवेचना का गठन परसाई जी, मायाराम सुरजन आदि विभूतियों ने ज्वलंत मुद्दों पर सचाई को सामने लाने के लिए किया था। फिर विवेचना ने अपना नाट्यदल बनाया और नाटकों की दुनिया में नाम कमाया। संवाद की कार्यशाला की योजना के बारे में उन्होंने बताया कि करोना का शिकार होने के पहले तक स्व. प्रदीप दुबे की इच्छा थी कि उद्घोषणा की कार्यशाला हो और नए लोगों को इस कला की बारीकियों से परिचित कराया जाए। बाँके बिहारी ब्यौहार ने अतिथियों का परिचय दिया।

भोपाल से पधारे लोकप्रिय उद्घोषक विनय उपाध्याय ने प्रतिभागियों को बेहतर उद्घोषक बनने के लिए ज़रुरी गुणों की विस्तार से चर्चा की। उन्होंने कहा कि उद्घोषणा या संवाद की कला को फौरी तौर पर नहीं समझा जा सकता। भाषा, ज्ञान, संस्कार, सोहबत, शिक्षा और सलीका लंबी साधना और धीरज से अर्जित की जाने वाली पूँजी है। विनयजी ने लगभग तीन घंटे के अपने धाराप्रवाह उद्बोधन में उद्घोषणा के बुनियादी पक्षों पर चर्चा की। नाद की प्रकृति, शब्द की संस्कृति और विचारों की अभिव्यक्ति का कौशल अध्ययन और श्रवण (सुनने) के संस्कारों पर निर्भर होता है। उन्होंने कहा कि उद्घोषणा की गुणवत्ता के विकास को लेकर गंभीर प्रयत्नों का अभाव है। उन्होंने कहा कि समारोहों के आयोजक उद्घोषणा तो चाहते हैं पर उद्घांषक की अपेक्षाओं को पूरा करने या उन्हें उचित आदर देने में कोताही बरतते हैं। इसके लिए एक सतत अभियान चलाए जाने की दरकार है। 'विवेचना' ने अगुआई की, इसके लिए साधुवाद।

समापन सत्र में उद्घोषक यूनुस ख़ान ने प्रतिभागियों से आग्रह किया कि कार्यशाला में बताई बातों का हमेशा अभ्यास जारी रखें। राजीव कुमार शुक्ल ने अभ्यास प्रस्तुतियों की समीक्षा की। साधना उपाध्याय ने सभी प्रतिभागियों को प्रमाण पत्र वितरित किए गये।

सुरपराग और रोटरी क्लब ऑफ़ जबलपुर के सहयोग से आयोजित विवेचना की इस कार्यशाला में 40 प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया। आभार बांकेबिहारी ब्यौहार ने माना। नेपथ्य की ज़िम्मेदारी अजय धाबर्डे ने सम्हाली। कार्यशाला मनु तिवारी के सहयोग से होटल अन्नपूर्णा इन के सभागार में हुई। - **हिमांशु राय**

छाया: अजय धाबर्डे

गुमनाम किरदार के पक्ष में

किताब

हिन्दी के आधुनिक परिसर में बहुविधायी रचनाशीलता के साथ सक्रिय देवेन्द्र दीपक की कृति 'सुषेण पर्व' की आमद कई मायनों में महत्वपूर्ण है। अव्वल तो यही कि नये मौलिक नाटकों के अभाव का ढिंढोरा पीट रहे हिन्दी रंगमंच को यह अनूठी सौगात है। दूसरा रामकथा के एक सर्वथा उपेक्षित चरित्र को पुनर्जीवित कर उसे ऐतिहासिक गरिमा के साथ प्रतिष्ठित किया गया। यह भी कि एक किरदार यहाँ उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में समग्रता के साथ उद्घाटित हुआ है। इस तरह यह नाट्य कृति नए विमर्श का प्रस्ताव है।

दीपकजी मूलत: कवि रहे हैं लिहाज़ा संवेदना की गहराई उनके सृजन में साफ़ झलकती है। इस काव्य नाटक में भी वे इसी इंटेंसिटी के साथ प्रवेश करते हैं और 'सुषेण वैद्य' के अनचीन्हे पहलुओं का खुलासा करते हैं। कल्पना और प्रामाणिकता के संयोग से रचे इस नाटक को प्रयोग की रंगभूमि कितना स्वीकारती है, यह सवाल फिलहाल बना हुआ है। क्योंकि नाटक की कसौटी अंतत: उसका मंचन है। बहरहाल इन्द्रा पब्लिशिंग हाउस, भोपाल ने एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ प्रस्तुत किया है।

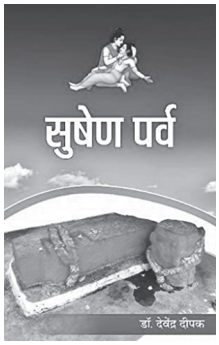

इस पुस्तक में संग्रहित टिप्पणी में मूर्धन्य साहित्य मनीषी श्यामसुंदर दुबे कहते हैं- सुषेण वैद्य रामकथा में अपने लिए बहुत छोटा-सा स्थान भले ही घेरते हों, किन्तु उनकी यह संक्षिप्त-सी उपस्थिति इस कथानक को एक विशेष ऊर्जा से अभिमंडित करती है। राम-रावण युद्ध को लक्ष्मण की मूर्च्छा एक अनपेक्षित विवाद प्रसंग में तब्दील कर देती है। यहाँ सम्पूर्ण सेना सहित राम शोक संतप्त हैं। युद्ध की भयंकरता के बीच यह जीवन के द्वंद्वों का न केवल समाहार है, बल्कि द्वंद्व मुक्ति का गहन वृतांत भी है। दीपक जी इसी स्थापना के परिसर में अपने इस नाटक को विस्तारित करते हैं। नाटक में युद्ध के कारकों का दृश्य-बोध, युद्ध की प्रतिहिंसा से उपजते क्रोध तथा जीवन व्यापिनी भावना के विष का शोध अपनी गहरी प्रतिकारात्मक और समाजपरक निष्ठा के प्रकाश में प्रकट होता है।

निश्चय ही यह लघु काव्य नाटक अपनी स्वल्प संवाही संरचना में बोध के अनेक स्तरों का स्पर्श करता है। इस नाटक में भले ही केन्द्रीय चरित्र के रूप में सुषेण वैद्य के चरित्र की रचना की गई हो, किन्तु हनुमान की भूमिका भी इसमें महत्वपूर्ण है। सुषेण एक ऐसे चिकित्सक हैं, जो लोकव्यापी वेदना को दूर करने के लिए राज्य द्वारा प्रदत्त राज वैद्य का पदक उतार देते हैं और कर्म के मर्म का धर्म उद्घाटित करते हैं।

दीपकजी के बहुचर्चित काव्य नाटक 'खगोल राजा का, भूगोल राजा का' का मंचन कर चुकी प्रसिद्ध कोरियोग्राफर वैशाली गुप्ता इस नाटक को दृश्य विधान और रंग-प्रस्तुति में सहज सादगी से भरी रचना मानती हैं। यह नाटककार के लोकधर्मी सृजन स्वभाव से परिचालित है। संवादों की अर्थगर्भिता और प्रभविष्णुता चरित्रों की आत्म-उजास को प्रकट करने में समर्थ है। दीपक जी ने अपनी कुछ मौलिक उद्भावनाओं से कथा-तंतु को विकसित किया है। यह उनकी सृजन सामर्थ्य का प्रतीक प्रसंग है। निश्चित ही यह नाटक अपनी संपूर्ण प्रस्तुति में भारतीय रंग-मंच की कतिपय जटिलताओं से मुक्त होने का संदेश वाहक बनेगा।

वे कहती हैं कि सारे कथोपकथन अर्थपूर्ण हैं। प्रवाह और लय बराबर बनी रहती है। यह नाटक गम्भीर है। अत: इसके मंचन के लिए अभिनेताओं में भी गंभीर भाषिक संस्कार की आवश्यकता है।

सौग़ात

- आज के समय में कविता (विमर्श)
  चयन: त्रिलोक महावर
  मूल्य: 250/- रू.
  प्रकाशक: आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल
  संपर्क: 0755-4851056

- स्याही के रंग (कविता संग्रह)
  लेखक: अभिषेक सिंह
  मूल्य: 250/- रू.
  प्रकाशक: बोधी प्रकाशन्, जयपुर
  संपर्क: 9829018087, 01412213700

- चतुर्वेदी चन्द्रिका (शोध)
  लेखिका: विनीता चौबे
  मूल्य: 350/- रू.
  प्रकाशक: आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल
  संपर्क: 0755-4851056

- सहेजा हुआ अतीत (कविता संग्रह)
  लेखक: अखिलेश बार्चे
  मूल्य: 150/- रू.
  प्रकाशक: सरस्वती सेवा प्रकाशन, खरगोन
  संपर्क: 9826087782

- मैं तुम्हारी बाँसुरी हूँ (कविता संग्रह)
  लेखक: रामवल्लभ आचार्य
  मूल्य: 200/- रू.
  प्रकाशक: चन्द्रिका प्रकाशन, भोपाल
  संपर्क: 9826824874

- सूखे पत्तों पर चलते हुए (कविता संग्रह)
  लेखक: शैलेन्द्र शरण
  मूल्य: 150/- रू.
  प्रकाशक: शिवना प्रकाशन, सीहोर
  संपर्क: 9806162184, 7568405545

- दो गज़ ज़मीन (उपन्यास)
  लेखक: हरि भटनागर
  मूल्य: 150/- रू.
  प्रकाशक: शिवना प्रकाशन, सीहोर
  संपर्क: 9806162184, 7568405545

- उखड़ती साँसें
  लेखिका: आभा भारती
  मूल्य: 200/- रू.
  प्रकाशक: आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल
  संपर्क: 0755-4851056

- समानांतरनामा (पत्रिका)
  संपादक: अनिल रंजन भौमिक
  मूल्य: 200/- रू.
  प्रकाशक: समानांतर, इलाहाबाद

- प्रेरणा (पत्रिका)
  संपादक: अरुण तिवारी
  मूल्य: 50/- रू.
  संपर्क: 07554940788

लोकरंगी बयार...

बिलासपुर में रामन् लोक कला महोत्सव

एक ऐसा बहुरंगी उत्सव जहाँ मिट्टी की महक और उसकी महिमा को मुखरित करती कलाओं का सतरंगी संसार सिमट आया। जंगलों, नदियों, खेत-खलिहानों से लहकती रत्नगर्भा धन्य धरती छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विरासत के सुनहरे अध्यायों को याद करने की यह अनूठी पहल डॉ. सी.वी. रामन् विश्वविद्यालय, कोटा, बिलासपुर ने की। रामन् लोक कला महोत्सव के नाम से स्थापित हो चुकी इस रंगारंग गतिविधि में 20, 21 और 22 अप्रैल की शामें करमा, भरथरी, गौर, ककसार और ढोला मारू की लय-ताल और लचक भरे नृत्यों के साथ ही पारंपरिक व्यंजनों के ज़ायक़े तथा लोकरंगों से महकती कलाकृतियों से रोशन रहीं। छत्तीसगढ़ की राज्यपाल सुश्री अनसुईया उईके ने इस जलसे का आगाज़ किया। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे ने अपने उद्‌बोधन में जनजातीय धरोहर और आज के समय में उनके वजूद को क़ायम रखने वाली जनचेतना को रेखांकित किया। उन्होंने रामन् विश्वविद्यालय के शैक्षिक और सांस्कृतिक प्रकल्पों का ज़िक्र भी किया। कुलपति प्रो. रवि प्रकाश दुबे ने वि.वि. के शोधकार्यों तथा विशेषकर लोक संस्कृति के क्षेत्र में किये जा रहे प्रयासों का उल्लेख किया। कुलसचिव गौरव शुक्ला ने रामन् कला महोत्सव को छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक उपलब्धि बताया।

पहले दिन कर्मा और ककसाड़ नृत्य ने लोगों का मन मोह लिया। पारंपरिक वेशभूषा में सजे-धजे आदिवासी मांदर की थाप पर थिरकते नज़र आए। सिद्धेश्वर करमा नृत्य मंडली पड़ीगाँव तमनार रायगढ़ के करमा नृत्य मंडली ने शानदार प्रस्तुति दी। मांदर की थाप पर सभी का मन थिरकने लगा। इसके बाद बस्तर से आए गागरू राम के ककसार नृत्य में बस्तर की झलक दिखाई दी। विश्वविद्यालय परिसर में गाँव की तर्ज पर गुड़ी बनाई गई जिसमें अंचल से आए ज़मीनी कलाकारों ने नंगाडा, बांस गीत, गड़वा बाजा, जस गीत सहित कई कलाकार रात तक अपनी पारंपरिक प्रस्तुति देते रहे।

सरकारी, गैर सरकारी निजी और विश्वविद्यालयों के साथ 50 से अधिक स्टाल लगाए गए। इस दौरान छत्तीसगढ़ी व्यंजन आकर्षण का केंद्र रहे। फरा, दाल बड़ा, साबूदाना बड़ा, गुलगुला, टेटरी, खुरमी, मुर्रा के लड्डू, शक्कर पपड़ी, गुड पापड़ी, धुसका, चौसला, चना, मुर्रा, चीला कई प्रकार के पारंपरिक व्यंजनों का लुत्फ़ लोगों ने लिया। अगले दिन भी महोत्सव में भारी भीड़ उमड़ी रही। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के विभागों द्वारा प्रदर्शनी की जानकारी लेने विशेषकर युवा विद्यार्थी और अचंल के लोग यहाँ पहुँचे। इसी तरह केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार व स्थानीय निकाय के द्वारा लगाई गयी प्रदर्शनी में आगंतुक जानकारियाँ लेते रहे। करमा नृत्य, पंडवानी, डंडा नृत्य, धुरवा मड़ई नृत्य और भरथरी की शानदार प्रस्तुतियाँ हुई जिसे सभी ने सराहा। विश्वविद्यालय के ग्रामीण प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा नरवा गरवा घुरवा बाड़ी का मॉडल बनाया गया। अनुपम तिवारी द्वारा हर्बल उत्पाद साबुन हैंडवाश फिनायल सहित मेडिसिनल प्लांट के बारे में भी जानकारी लोगों को दी गई। इसी तरह छत्तीसगढ़ी साहित्य पर केंद्रित एक विशेष स्टाल भी लगाया गया। रेखा दुबे द्वारा यहाँ छत्तीसगढ़ साहित्य के इतिहास, लेखन, पठन, साहित्यकारों के बारे में जानकारी दी गयी। इंजीनियरिंग विभाग से विद्यार्थी अनंग टडार के द्वारा बनाया गया, चश्मे का मॉडल आकर्षण का केंद्र रहा जिसमें नेत्रहीन व्यक्ति को पहले से सामने रूकावट का भास होगा और उसे चलने में सुविधा होगी। इस मॉडल को राष्ट्रपति द्वारा भी पुरस्कृत किया जा चुका है। विधि विभाग द्वारा विधिक साक्षरता का स्टॉल लगाया गया। महोत्सव में संजीवनी मार्ट वन औषधि विभाग द्वारा एक विशेष स्टॉल भी लगाया गया जिसमें वनौषधि से उत्पाद तैयार करने के तरीक़े भी बताए गए।

सीवीआरयू ने यह प्रमाणित किया है कि आदिवासी क्षेत्र में भी सफलतापूर्वक विवि संचालित किया जा सकता है। यहाँ छत्तीसगढ़ी लोककला एवं संस्कृति केंद्र तथा छत्तीसगढ़ी शोध एवं सृजनपीठ के माध्यम से लोककला संस्कृति के संवर्धन एवं सरंक्षण के साथ-साथ इसे मूल रूप में भावी पीढ़ी को हस्तांरित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया जा रहा है।

कथादेश

भारत के हिन्दी कथाकारों पर केन्द्रित कथाकोश

TAGORE INTERNATIONAL LITERATURE & ARTS FESTIVAL
विश्व रंग

प्रधान संपादक संतोष चौबे

आईसेक्ट पब्लिकेशन

'कथादेश' के सम्पूर्ण सेट का मूल्य 17,820 रु. है। जिस पर निर्धारित छूट देय होगी।

कथादेश के खंड निम्न समूहों के अनुसार भी क्रय किये जा सकते हैं :

धरोहर

(धरोहर, प्रेमचंदोत्तर कहानी-1 व 2)

तीनों खंड एक साथ 2970 रु. (छूट के साथ 2200 रु.)

नई व साठोत्तरी कहानी

(नई कहानी-1 व 2 तथा साठोत्तरी कहानी-1 व 2)

चारों खंड एक साथ 3960 रु. (छूट के साथ 3000 रु.)

समकालीन कहानी

(समकालीन कहानी-1, 2, 3, 4, 5, 6 व 7)

सातों खंड एक साथ 6930 रु. (छूट के साथ 5200 रु.)

युवा कहानी

(युवा कहानी-1, 2, 3 व 4)

चारों खंड एक साथ 3960 रु. (छूट के साथ 3000 रु.)

डाक से मँगाने पर डाक खर्च अलग से देय होगा।

'कथादेश' प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें

आईसेक्ट पब्लिकेशन

ई-7/22, एस.बी.आई., अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016

फोन : 0755-4851056, 8818883165

E-mail : aisectpublications@aisect.org, mahip@aisect.org

आईसेक्ट लिमिटेड

स्कोप कैम्पस, एनएच-12, होशंगाबाद रोड, भोपाल-462047

फोन : 0755-2432801, 2432830

'कथादेश'

अमेजन व आईसेक्ट ऑनलाइन पोर्टल पर भी उपलब्ध है

अंतरंग

• संघर्ष की पटकथा • शांति निकेतन का आदर्श • तीसरी रंगधारा के जनक
• यादों का संतूर • पंडवानी का परचम • किस्सा-ए-ओम-सुधा
• खारा तो नहीं हुआ तुम्हारी आत्मा का जल • भाव से अहोभाव की यात्रा
• मेरा संस्कार, मेरी पूँजी • सुरीले परिवेश की पहल
• ये है जानकी बैंड • बुकर और हिंदी की बहस • रूह की धड़कन बन गए पत्थर
• अभिनय की काया में किरदार • हो चित्त जहाँ भय शून्य
• सोपोरी बाज के बेताज फनकार

TAGORE INTERNATIONAL
LITERATURE & ARTS FESTIVAL
विश्व रंग